षड्दर्शन दर्पण।

जिसमें न्याय आदिक छः दर्शनोंका

विचार किया है॥

काशीके एक पण्डितने लिखा है॥

HINDU PHILOSOPHY EXAMINED

BY A

BENARES PANDIT.

CALCUTTA:

PRINTED FOR THE CALCUTTA CHRISTIAN TRACT AND BOOK SOCIETY,

NO. 1, HARE-STREET, AT THE BAPTIST MISSION PRESS.

1860.

सूचीपत्र।

१ प्रथम भाग।

१ पहिला अध्याय।

२ दूसरा अध्याय।

३ तीसरा अध्याय।

४ चौथा अध्याय।

५ पांचवां अध्याय।

२ दूसरा भाग।

जिसमें न्याय और वैशेषिककी परीक्षा है॥

१ प्रथम अध्याय।

२ दूसरा अध्याय।

३ तीसरा अध्याय।

४ चौथा अध्याय।

आभाष।

काशीके और हिन्दुस्तानके और स्थानोंके विद्या-
वान् महात्मा पण्डित लोगोंकी सेवामें इस दासकी
नम्रता पूर्वक यह प्रार्थना है कि मैंने जो इस ग्रन्थके
लिखनेमें परिश्रम किए हैं उसमें मेरे अभिप्रायको
कृपा करके बूझ लेवें। यह तो सब मनुष्योंको और
विशेष करके पण्डितोंको अत्यंत उचित है कि सब
बातोंमें और निज करके उन बातोंमें जो हमारे
आत्मिक कल्याणसे संबंध रखती हैं सत् और असत्-
का विवेक करें। और इस विषयमें पक्षपात अथवा
आलस्य करना तो अत्यंत अयोग्य है। मेरी समझमें
जो कोई ऐसे विषयमें पक्षपात और आलस्य करता
है वह और बातोंमें कितना भी बुद्धिमान और
चतुर क्यों न हो तथापि इतनी बातमें तो वह अत्यंत
अविवेकी और साहसी कहलानेके योग्य है। अब
इन षड्दर्शनोंका इस देशमें बड़ा मान है और वे
मानों यहांके मतके खंभे हैं। इसलिए ऐसा कौन
आत्महितार्थी है जो ऐसे भारी विषयोंका विचार न

करे। इसलिए मैंने अपनी शक्ति भर उनका विचार किया। और जैसा कुछ उनके विषयमें मुझको बोध हुआ वैसा मैंने औरोंको भी सूचना करनेके लिए इस ग्रंथमें लिख दिया। पर हे महाशय जी यद्यपि मेरी बुद्धि अत्यंत परिमित है तथापि जितनी बातोंकी चर्चा इस ग्रंथमें की है उतनोंको मैंने अपनी शक्ति भर अच्छे प्रकारसे बूझ लिया है और तब उनको यहां लिखनेका साहस किया है। तिस पर भी जिन बातोंको इस ग्रंथमें लिखा है उनमें भी यदि मैंने भूल की हो तो आप उसको कृपा करके बता देवें तो मैं तत्काल उसका स्वीकार करूंगा। क्योंकि इतना आप लोग निश्चय करिये कि मैंने इस ग्रंथको मनकी कुटिलतासे नहीं लिखा और न मुझको इस बातमें कुछ आनन्द है कि शास्त्र कारों-की भर्त्सना किई जाए। क्योंकि प्रभु जिसके शरणमें मैं आया हूं उसकी यह एक बड़ी आज्ञा है कि सभोंको प्रतिष्ठा देना सभोंका भला चाहना और दूसरोंकी तो क्या बात पर अपने बैरियोंके विषयमें भी कुटि-लता और कपटकी बुद्धि न रखना। पर मैंने जो कुछ इस ग्रंथमें लिखा है सो केवल इस बात पर दृष्टि करके लिखा है कि सत्यका प्रकाश होवे और असत्य-का त्याग किया जावे। सो इस उत्तम और महा-प्रयोजनके प्राप्त करनेके लिए यदि किसीके विषयमें

कुछ भला बुरा कहना पड़े तो केवल निरुपाय होके ऐसा करना पड़ता है। क्या अच्छी बात होती यदि इस जिह्वाको दूसरोंके दोषरूपी कांटोंपर चलना न पड़ता और पर मत खंडन रूप संतप्त भूमिपर पांव धरना न पड़ता। पर सबके सब ईश्वरके सत्य मार्ग-पर एक मत होके परस्पर प्रीतिरूप अमृत फलके रसको छोड़ और कुछ न जानते। पर क्या कहिए अभी इस जगत्की ऐसी स्थिति नहीं है। बरन जगत्की दशा एक रोगी मनुष्यके समान है। कि उसके भावि आरोग्यपर दृष्टि करके उसको कई कड़ुवी कड़ुवी दवा पिलाना और उसके शरीरमें कई जगह चीर फाड़ करना आवश्यक होता है। और कोई इस कामको क्रूरता समझके उससे अलग न रहे बरन ऐसा काम न करना ही बड़ी क्रूरता और ईश्वर-के साम्हने अपराध ठहरेगा। इसलिए मैं इस आशा-का अवलंब करता हूं कि जो सच्चे विद्यावान् विवेकी और सुस्वभाव लोग हैं सो मेरे इस ग्रंथको देखके कुछ बुरा न मानेंगे बरन पक्षपात और ईर्ष्याको छोड़-के इसको देखेंगे और मेरी मतिके अनुसार जहां कहीं दर्शन कारोंकी बातें मुझको अत्यंत बाधित सी जान पड़ी हैं तहां मैंने यदि कोई कड़ा बचन कहा है तो मेरे शुभ अभिप्रायको जानके क्षमा करेंगे॥

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ १॥

यह रामायणका श्लोक है जिसके भावार्थको हम उनके लिए जो संस्कृतको नहीं जानते लिखते हैं कि हे राजा सदा मीठी मीठी बातोंके कहनेवाले मनुष्य बहुत मिल सकते हैं पर जो बात ऐसी है कि सुननेमें तो कड़ुवी पर हित करनेवाली है वैसी बातका कहनेवाला भी दुर्लभ है और सुननेवाला भी दुर्लभ है॥

षड्दर्शन दर्पण।

१ प्रथम भाग।

१ पहिला अध्याय।

जिसमें दर्शनोंकी परीक्षाके फल और थोड़ासा दर्शनोंका बर्णन और इस ग्रन्थके लिखनका क्रम कहा है।

हम इस ग्रन्थमें हिन्दुओंके षडदर्शनोंका संक्षेपमें विचार करने चाहते हैं। यद्यपि हिन्दुओंके धर्मके मूल प्रमाण वेद स्मृति पुराणादिक ग्रन्थ हैं और दर्शन उनके धर्मके मूल प्रमाण नहीं हैं क्योंकि उनमें केवल तर्कांश है और वे सब वेदादिकोंको धर्मका प्रमाण मानते हैं परन्तु अपने बचनोंको धर्मके विषयमें वेदादिके समान प्रमाण करके नहीं बताते इसलिये हिन्दुधर्मकी परीक्षा करनेमें दर्शनोंका विचार करना कुछ आवश्यक नहीं तथापि दर्शनोंके विचार करनेमें ये लाभ हैं॥

पहिले यह कि हिन्दु लोग षडदर्शनोंको ऐसा नहीं समझते कि वे साधारण मनुष्योंके लिखे हुये हैं। पर उनको ऋषियोंके लिखे समझते हैं। इसलिये उनका पद तो स्मृति पुराणादिके बराबर ठहरा क्योंकि वे भी उन्हींके समान ऋषियोंके बनाये कहलाते हैं।

इसलिये यदि विचार करनेसे दर्शनोंमें भूल स्थापित हो तो स्मृत्यादिकोंके भी प्रमाणत्वपर शंका आती है। क्योंकि जब यह सिद्ध हुआ कि ऋषि लोग भी भूलते हैं और जिन ग्रन्थोंमें वे जगतको तत्वज्ञान और निस्तारका उपाय सिखानेके लिये प्रतिज्ञा करते उन्हींमें बड़ी भूल प्रगट करते हैं तो किसी वचनको ऋषियोंका वचन होनेके कारणसे कौन भरोसाके लायक समझेगा॥

दूसरा लाभ यह है कि यद्यपि हिन्दुओंमें साधारण लोग दर्शनोंके सिद्धान्तोंको कुछ नहीं समझते तथापि पण्डितोंकी दृष्टिमें उनका बड़ा पद है। दर्शनोंमें जो कुछ ईश्वर और जीव जगत और उसकी उत्पत्ति बन्ध और मोक्ष आदिके विषयमें सिद्धान्त हैं सो ही मानों उनकी दृष्टिमें हिन्दु मतका मूल और सार हैं और स्मृति पुराणादिकोंकी जो कथा कहानी और क्रिया कर्म हैं सो केवल मानों उसकी शाखा हैं। और दर्शनोंहीके सिद्धान्त पण्डित लोगोंकी समझमें ऐसे उत्तम और युक्तिसे भरे हुये हैं कि वे उनको बड़ी प्रीतिसे पकड़ रहे हैं और इसी प्रीतिकी रस्सीने उनको हिन्दु धर्मके साथ बांध रक्खा है इसलिये हम जानते हैं कि ऐसे स्वशास्त्रवेत्ता सच्चे पण्डितोंकी दृष्टिमें सरल विचारके करनेसे और परमेश्वरकी कृपासे जो एक बार दर्शनोंके सिद्धान्तोंके दोष प्रगट हो जायें

तो उनके लिये हिन्दु धर्ममें कुछ भी रस बाकी न रहेगा॥

तीरसा लाभ यह है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि दर्शनकर्त्ता लोग बड़े बुद्धिमान और विद्यावान और सूक्ष्म बिचार करनेवाले थे। तो उन्होंने अपनी बुद्धि-को अपनी शक्तिके समान दौड़ाके जो तर्क किये हैं जब उनमें भी बड़ी बड़ी भूल दृष्टि पड़ती हैं तो इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्यको अपनी बुद्धिसे परमे-श्वरका सत्य ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। और तब जिस शास्त्रमें परमेश्वर और उसके सत्य मार्गका शुद्ध वर्णन हो उस शास्त्रका ईश्वरकी ओरसे होना निश्चित होता है॥

हम चाहते हैं कि परमेश्वर तुमपर कृपा करे और तुम पक्षपातको छोड़के और अपने आत्माके उद्धारके लिये सत्य मार्गके प्राप्त करनेकी इच्छासे जो बातें हम कहेंगे उनको बिचारो॥

षड्दर्शनोंके नाम ये हैं। न्याय वैशेषिक सांख्य योग मीमांसा वेदान्त। इनको षट्शास्त्र भी कहते हैं। सांख्य और योगका मत और सब बातोंमें समान ही है केवल इस एक बातमें उनका मत भेद है कि सांख्य मत ईश्वरको नहीं मानता और योग मत ईश्वरको मानता है। इसलिये हिन्दुओंके पुस्तकोंमें कहीं२ सांख्यको निरीश्वर सांख्य और योगको सेश्वर सांख्य भी

कहा है। और बहुत स्थलोंमें मीमांसाको पूर्वमीमांसा और वेदान्तको उत्तर मीमांसा कहते हैं। इन दोनों दर्शनोंको मीमांसा कहनेका कारण यह है कि वे दोनों निज करके वेदहीके बचनोंका विचार करते हैं। पूर्व मीमांसामें वेदके उस भागका बिचार है जिसमें कर्मकाण्ड है और उत्तर मीमांसामें वेदके उस भागका बिचार है जिसमें ज्ञानकाण्ड है। यह भाग वेदके अन्तमें है इसलिये इस भागको वेदान्त कहते हैं। इन षड्दर्शनोंके मतपर सहस्रों ग्रंथ कर्त्ता हुये है। कितने उनमेंसे बहुतही प्राचीन हैं और कितने नवीन हैं। परन्तु इन सब ग्रंथोंमेंसे वे ग्रंथ जिनको सूच कहते हैं और जो इन दिनोंके और सब ग्रंथोंके मूल कहलाते हैं उनके कर्त्ताओंको हिन्दु लोग ऋषि समझते हैं और वे इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं। न्यायका कर्त्ता गोतम उसको अक्षपाद भी कहते हैं वैशेषिकका कर्त्ता कणाद सांख्यका कर्त्ता कपिल योगका पतञ्जलि मीमांसाको जैमिनि वेदान्तका व्यास कहलाता है॥

अब इन छः दर्शनोंके विचारका क्रम हमने इस प्रकारसे ठहराया है। पहिले हम उन सिद्धान्तोंको दिखावेंगे जो प्रायः सब दर्शनोंमें समान हैं। उसके अनन्तर वेदान्तके सिवा और दर्शनोंके जो भिन्न२ सिद्धान्त हैं उनमेंसे उन सिद्धान्तोंको जो विशेष करके

बिचारनेके योग्य हैं दिखावेंगे। पर वेदान्त दर्शनके निज सिद्धान्तोंका बर्णन और उनकी परीक्षा हम इस ग्रन्थके तीसरे भागमें करेंगे। सो बाकी पांच दर्शनोंके निज सिद्धान्तोंका बर्णन जो हम करने चाहते हैं सो इस रीतिसे होगा। हमने ऊपर कहा कि सांख्य और योगके मत केवल एक बातको छोड़ और सब बातोंमें समान हैं इसलिये यहां उन दोनोंके सिद्धान्त भी एकही साथ दिखावेंगे। उसके अनन्तर मीमांसाकी एक दो बातें जो बिचारनेके योग्य हैं उनकी चर्चा करेंगे। फिर न्याय और वैशेषिक इन दो मतोंमें बड़ा मेल है पंडित लोग समझते हैं कि उनमेंसे जो एकमें बातें है सो दूसरेको अनिष्ट नहीं हैं वरन वे मानों एक दूसरेके पूरक हैं। यहांलों कि इन दिनोंमें पण्डित लोग जो न्यायके ग्रन्थ लिखते हैं उन्हींमें वैशेषिक मतकी बातोंको भी मिलाकर लिखते हैं और जिन बातोंमें उन दो मतोंमें मत भेद है उनको हम इस ग्रन्थमें चर्चा करनेके योग्य नहीं समझते। इसलिये हम इस ग्रन्थमें न्याय और वैशेषिकके सिद्धान्तोंकी चर्चा एकही समय करेंगे। तब उन सभोंकी परीक्षा जो हमको करना है उसमें यह रीति ठहराई है॥

छः दर्शनोंके तो बड़े२ ग्रन्थ हैं और उनमें अनेक बातोंका बर्णन है पर हम उनमें की प्रत्येक बातका

तो विचार नहीं करने चाहते हैं हमको केवल उनमें-की मुख्य२ बातोंका विचार करना है। अब ऐसी मुख्य बातोंमेंसे बहुतेरी बातोंमें उन सभोंके मत समान हैं यद्यपि कई एक भारी बातोंमें वे एक दूसरे से अत्यन्त विरुद्ध हैं। इसलिये उनमेंसे यदि एक दर्शनके मुख्य सिद्धान्तोंका भी पूरा बिचार किया जाय तो उसीसे बहुतसी बातोंमें इतर सब दर्शनोंका भी विचार हो जाता है। अब इन छः दर्शनोंमेंसे हमको तो न्याय और वैशेषिकका मत अधिक सयुक्तिक देख पड़ता है। पहिले तो वह मत एक अनादि अनन्त सर्वशक्तिमान ईश्वरको मानता है इसलिये वह सांख्य और मीमांसासे जो ईश्वरको नहीं मानते और वेदान्तसे भी जो जीव ईश्वरको एकही समझता है उत्तम है और इसके सिवाय और कई बातोंमें भी इतर दर्शनोंसे अच्छा है। इसलिये हम न्याय और वैशे-षिकके मतहीको हाथमें लेके उसीके सब मुख्य सिद्धा-न्तोंका पूरा बिचार करेंगे। पर उससे पहिले सांख्य और मीमांसाके उन दो चार निज सिद्धान्तोंका जो बिचार करनेके योग्य हैं कुछ बिचार करेंगे। और योगके निज सिद्धान्तोंका बिचार सांख्यहीके बिचारमें आजायगा और वेदान्तकी निज बातोंका तो अन्तमें बिचार किया जायगा॥

एक बात इसमें समझना चाहिये कि न्याय और

वैशेषिकका जो मत हमने इस ग्रन्थमें दिखाया है और जिसको दूसरे दर्शनोंसे उत्तम समझते हैं सो मत केवल उनके मूलसूत्रोंसे नहीं निकलता परन्तु सूत्रोंके पीछेसे उन मतोंके जो प्राचीन और नवीन ग्रन्थकर्त्ता हुये हैं उनके कहेके अनुसार जो न्याय और वैशेषिकका मत ठहरता है उसीको हमने यहां लिया है। क्योंकि हमको जान पड़ता है कि उनके मूलसूत्रों और उनके पीछेके ग्रंथोंमें बड़ा अन्तर है। क्योंकि इन ग्रंथोंमें तो ईश्वरकी बहुतसी चर्चा देख पड़ती है और उसके स्थापित करनेके लिये बहुतसा तर्क लिखा रहता है। बरन इन दिनों यह बात प्रसिद्ध है कि निज करके ईश्वरहीके सिद्ध करनेमें इन शा-स्त्रोंका तात्पर्य है। परन्तु बड़े आश्चर्यका विषय है कि यह बात उनके मूलसूत्रोंमें नहीं देख पड़ती। न्याय सूत्रमें तो एक सूत्रको छोड़ कहीं ईश्वरका नाम भी नहीं लिया। और जिस सूत्रमें ईश्वरका नाम लिया भी है सो कुछ ईश्वरके स्थापन करनेके लिये नहीं बरन खण्डन करनेके लिये है। क्योंकि उस सूत्रमें लिखा है कि ईश्वर जगत्का कारण नहीं हो सक्ता यद्यपि उसके टीकाकार उस सूत्रका अर्थ और प्रकारसे लगाते हैं। वैसेही वैशेषिक सूत्रमें भी कहीं ईश्वरका नाम नहीं देख पड़ता कहीं एकाध सूत्रमें उस ऐसा सर्बनाम पद आया है जिसके विषयमें

टीकाकार ऐसा समझते हैं कि वह ईश्वरके विषयमें है। पर हम इस ग्रंथमें पण्डितोंसे इस विषयमें बिवाद करने नहीं चाहते इसलिये जैसा कुछ न्याय और वैशेषिकका मत इन दिनोंमें प्रसिद्ध है उसीको लेके हम विचार करेंगे ॥

---

२ दूसरा अध्याय।

जिसमें सब दर्शनोंके समान सिद्धान्तोंका और वेदान्तके सिवाय और पांच दर्शनोंके निज सिद्धान्तोंका बर्णन है।

अब पहिले जिन२ बातोंमें प्रायः सब दर्शनोंका एक मत है उनका बर्णन करते हैं।

दर्शनोंका विचार करनेसे यह जान पड़ता है कि मीमांसाको छोड़ सभोंके लिखनेका प्रयोजन निःश्रेयसका उपाय बताना है ॥

फिर उन सभोंके मतसे अज्ञानही बंधका मुख्य कारण है। और वह अज्ञान यही है कि आत्मा यद्यपि मन इन्द्रिय शरीरसे भिन्न है तथापि अपनेको उनके साथ एक करके समझता है। दर्शनकार यह समझते हैं कि जैसे शरीर और इन्द्रिय तैसे मन भी आत्मासे भिन्न पदार्थ है। सो वे कहते हैं कि इसी अज्ञानसे उसको राग द्वेष उत्पन्न होते हैं। क्योंकि जब आत्मा अपनेको शरीरादिकोंके साथ एक करके समझता है तभी वह इस संसारमें फंसता है। और कितनोंको

अपना और कितनोंको पराया समझता है और शरीरादिकोंके द्वारासे कितने पदार्थ उसको सुखदायी और कितने दुःखदायी होते हैं। इसलिये सुखदायी पदार्थोंपर उसको राग और दुःखदायी पदार्थोंपर द्वेष उत्पन्न होता है। और इन्हीं राग द्वेषके कारणसे वह अनेक भले और बुरे कामके करनेमें प्रवृत्त होता है जिससे उसको पाप और पुण्य होते हैं। तब उनके भले और बुरे फल भोगनेके लिये स्वर्ग और नरकमें जाना पड़ता और बार२ जन्म और मरणरूपी इस संसार चक्रमें भ्रमना पड़ता है। आत्माको शरीरादिकोंके साथ एक करके समझना यही तो मुख्य अज्ञान है जो जीवको बंधनमें डालता है पर और भी कई प्रकारके अज्ञान हैं जो इसी अज्ञानसे निकलते हैं और बंधके कारण होते हैं जैसे इस संसारके तुच्छ विषयोंको महा सुखदायी जानना इत्यादि ॥

वे जैसे पाप कर्म तैसे पुण्य कर्मको भी बंधका कारण समझते हैं। क्योंकि पाप कर्मका फल तो दुःखही है परन्तु पुण्य कर्मका फल यद्यपि सुख है तथापि पुण्य कर्म इसलिये बन्धका कारण कहलाता है कि वह जीवको मुक्त होनेसे रोकता है। क्योंकि शास्त्रकारोंकी समझमें मुक्ति तो वही कहलाती है जिसमें जीव शरीर मन और ज्ञान इच्छादिकोंसे रहित हो जाए। परन्तु पुण्य कर्म अपने सुखरूपी फल भोगावनेके लिये

जीवको बरबस देव, मनुष्यादिकोंका शरीर धारण करावेगा जबलों कि उसका भोग न हो चुके। क्योंकि जो कोई शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है उसका फल उसको भोगना आवश्यक है। और पुण्यका जो वह सुखरूपी फल है सो कुछ ऐसा उत्तम नहीं है। क्योंकि वह विनाशवान है और अनेक दुःखोंसे मिश्रित है इसलिये वह भी दुःखरूपी है। जैसा स्वर्गमें जाना और इस संसारमें अच्छे कुलमें उत्पन्न होना धन प्राप्त करना इत्यादि पुण्य कर्मके फल हैं। परन्तु जबलों उस पुण्य कार्मके फलका भोग पूरा नहीं हुआ तभीलों ये सब सुखकारक पदार्थ रहते हैं पर उसका भोग पूरा होनेपर नष्ट होते हैं। तब उनके वियोगमें भी दुःखही होता है। और जबलों अज्ञान जीवमें है तबलों उसमें राग द्वेष बने रहेंगे तबलों फिर फिर पाप पुण्य करना और जन्म मरणके चक्रमें भ्रमना उससे नहीं छूटता। पर यदि कोई कहे कि यदि धर्म भी बंधका कारण है तो मैं धर्मका कर्मही न करूंगा जिसतें उस बंधनसे बचा रहूं तो नहीं बननेका। क्योंकि जबलों जीव अज्ञान दशामें है तबलों यदि वह धर्मका काम न करे तो अधर्मी हो जाएगा। पर धर्म और अधर्म इन दोनोंके बंधनसे छूटनेका उपाय केवल ज्ञानही है॥

इसलिये वे कहते हैं कि केवल ज्ञानके प्राप्त करने-

हीसे इस संसार चक्रसे छुटकारा हो सक्ता है। वह ज्ञान यही है कि आत्मा अपनेको जाने कि मैं मन इन्द्रिय और शरीरसे भिन्न हूं। यह तो मुख्य ज्ञान है पर इसके सिवाय और भी कई प्रकारके ज्ञानको प्राप्त करना चाहिए जैसा कि इहलोक और परलोकके सुखोंको तुच्छ समझना इत्यादि। इस ज्ञानके प्राप्त करनेके लिये शास्त्रको पढ़ना। फिर इसके लिये बुद्धिकी शुद्धि भी आवश्यक है इसलिये वे कहते हैं कि यज्ञ दान तीर्थयात्रा जप तप आदिक पुण्य कर्मोंको करना। उनके करनेसे मनकी शुद्धि होती है जो ज्ञानकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त उपयोगी है। सो शास्त्र और गुरुके उपदेशसे उस ज्ञानको प्राप्त करके कुछ काललों उसी बातका श्रवण मनन निदिध्यासन करते रहना जिससे आत्माका साक्षात्कार होता है। उससे राग द्वेष दूर होते हैं। क्योंकि यद्यपि इस पूर्ण ज्ञानके होनेपर भी जबलों जीव शरीरमें है तबलों शरीरके द्वारासे बाह्य विषयोंके सम्बन्धसे कुछ२ राग द्वेष ऊपर ऊपरसे उत्पन्न होते हैं तथापि उनका बल घट जाता है। और शरीर छूटनेके अनन्तर सर्वथा दूर होता है। और ज्ञानी पुरुष जबलों शरीरमें है तबलों कुछ२ कर्म भी करता है तथापि उस करके उसको पाप अथवा पुण्यका लेप नहीं हो सक्ता। इसलिये उनका फल भोगनेके लिये स्वर्ग नरक और

पुनर्जन्म उसको नहीं होते। और उसी ज्ञानमें यह भी प्रभाव है कि उसके प्राप्त करनेके पहिले जो जो उस जीवने भले अथवा बुरे कर्म किये हैं वे सब एक प्रारब्ध कर्मको छोड़ दग्ध होते हैं। क्योंकि तीन प्रकार-के कर्म हैं एक संचित और दूसरा क्रियमाण और तीसरा प्रारब्ध। संचित कर्म यह है जो ज्ञान होनेके पहिले इस जन्ममें और पूर्व जन्ममें किया है वह तो ज्ञानके होतेही दग्ध हो जाता है। क्रियमाण वह है जो ज्ञान उत्पन्न होनेके अनन्तर किया जाता है पर वह ज्ञानीको लिप्त नहीं कर सक्ता। प्रारब्ध वह है जो पूर्व जन्ममें किया है और जिससे वर्त्तमान जन्मका शरीर उत्पन्न हुआ है। ये तीन कर्म मानों तीन प्रकारके बीजोंके समान हैं। वह कर्मरूपी बीज जो ज्ञानी किसानके खत्तेमें भरा है वह मानो संचित है वह तो ज्ञानसे जल जाता है। फिर वह कर्मरूपी बीज जो ज्ञानी किसान बो रहा है वह क्रियमाण है वह तो मानों उसके हाथके स्पर्शसे दग्धसा हो रहा है कि उससे कुछ फल नहीं होगा। फिर वह बीज जो उसने पहिलेही बोया था और जो फल ला चुका है वह प्रारब्ध है। सो यह प्रारब्ध कर्म नष्ट नहीं होता। इसी कर्मके भोगनेके लिये ज्ञानीको शरीरमें रहना पड़ता है और अनेक सुख दुःख भोगना पड़ता है। परन्तु जब इस प्रारब्ध कर्मको भोग चुका तब

शरीर छूट जाता है और फिर उसको जन्म नहीं होता। क्योंकि अब उसके पास कोई कर्म नहीं है और जन्म तो केवल पूर्वकृत कर्मके भोगनेहीके लिये होता है। सो ज्ञानी पुरुष मरनेके अनन्तर न केवल शरीरसे बरन मन और ज्ञान और सब बातोंके भानसे रहित होके पाषाणके समान हो रहता है और सदाके लिये इस संसारके दुःखसे छुटकारा पाता है। यही दर्शनकारोंका निःश्रेयस और परम पुरुषार्थ है। इससे प्रगट है कि उन मतोंके समान केवल दुःखसे छूटना यही निःश्रेयस है पर उसमें कुछ आनन्दकी प्राप्ति नहीं॥

फिर सब दर्शनकर्त्ता जीवको अनादि और अविनाशी मानते हैं कि जीवकी कभी उत्पत्ति नहीं भई और उसका बनानेवाला कोई नहीं परन्तु वह आपसे आप सदा कालसे बना है और सदालों बना रहेगा॥

फिर सब दर्शनकार जीवको बार२ जन्म मानते हैं। और उनके मतके समान इस प्रकारसे मरना और जनमना अनादि कालसे होता आया है और मनुष्यका जीव पशुके शरीरको धारण करनेसे पशु और पशुका जीव मनुष्यके शरीरको ग्रहण करनेसे मनुष्य होता है। बरन यह जीव देवतालों ऊपर चढ़ सक्ता और वृक्षादिकलों नीचे उतर सक्ता है॥

सब दर्शनोंके समान जो कुछ कार्य होता है सो

जीवोंके पाप पुण्यरूपी कर्मोंके कारणसे होता है। और वह कार्य कैसा भी लघु और तुच्छ क्यों न हो तथापि वह भी इसी नियमके अधीन है। यदि एक छोटा परमाणु अन्तरिक्षके एक प्रदेशमे उड़के केवल चार अंगुलके अन्तरमें भी चला जाय और हमारी दृष्टिमें उससे किसीको लाभ अथवा हानि न होवे तथापि उससे भी साक्षात् अथवा परम्परासे किसी न किसी जीवको भला अथवा बुरा अल्प अथवा महत् फल अवश्य होगा। इसलिये वह कार्य भी जीवोंके कर्मके अनुसारही हुआ है ऐसा मानना चाहिये॥

फिर सब दर्शनकार समस्त जगत् सृष्टिको किसी न किसी उपादान कारणसे मानते हैं। जिस द्रव्यसे कार्य निकलता है वह द्रव्य उस कार्यका उपादान कारण कहलाता है। जैसे मृत्तिका घटकी और सुवर्ण अलंकारका उपादान कारण है। और इसी कारणसे जो कुछ सारे कार्योंका आदि उपादान है उसको दर्शनकर्त्ता अनादि मानते हैं॥

सो जब जीव अनादि ठहरे और जगतका आदि उपादान कारण भी अनादि माना गया और जीवोंका जन्म लेना और मरना और पाप पुण्य करना और उनके कर्मका फल प्राप्त करनेके लिये जगतकी नाना वस्तुओंका बनना और बिगड़ना भी अनादि कालसे ठहरे तो यह बात स्पष्ट है कि दर्शनकर्त्ता समस्त

सृष्टिको अनादि कालसे मानते हैं। यह तो है कि इसमें कई बार इस दृश्य जगतका प्रलय और उत्पत्ति होती रहती है और प्रलयमें यह स्थूल जगत अपने सूक्ष्म उपादान कारणमें लीन होता है। पर इस प्रकारसे सदा प्रलय और उत्पत्ति होते हुये सृष्टिकी धारा अनादि कालसे होती आई है॥

फिर सब दर्शनकार वेदके बचनको अशङ्कनीय प्रमाण मानते हैं। और वेदसे अविरुद्ध धर्मशास्त्र और पुराण आदिक जो ऋषियोंके बनाये हुये पुस्तक कहलाते हैं उनको भी प्रमाण समझते हैं। ये सब दर्शनोंके मुख्य२ सिद्धान्त हैं जिनमें प्रायः सभोंका एक मत है॥

जो सिद्धान्त सब दर्शनोंमें आपुसमें समान हैं उनका बिचार करना अति लाभदायक है क्योंकि उसके जाननेसे यह देख पड़ता है कि हिन्दु पण्डितों-की बुद्धिकी झुकाहट बहुधा किधरको है और उसकी दौड़ कहांतक है॥

अब जो भिन्न२ दर्शनोंके भिन्न२ सिद्धान्त हैं उनमें जो मुख्य२ हैं उनका बर्णन यह है॥

सांख्य और योगके सिद्धान्त ये हैं। वे प्रकृति और पुरुष इन दो पदार्थोंको मानते हैं। जीवोंको पुरुष कहते हैं और उनको अनादि अनन्त और अनेक समझते हैं। प्रकृति जड़ पदार्थ है जो जगतका उपा-

दान कारण है। सत्व रज और तम ये तीन पदार्थ जिस दशामें समान रहते हैं उसी दशाको प्रकृति कहते हैं। इसमें एक बात जानना चाहिये कि जैसे लोगोंमें सत्व रज तम केवल आत्माके गुण अथवा दशाविशेष समझे जाते हैं वैसा सांख्यवाले नहीं समझते पर वे उनको जड़ द्रव्यरूप मानते हैं नहीं तो वे जगतका उपादान कारण कैसे हो सकें। और यद्यपि वे भी उनको गुण करके कहते हैं पर वे औरही अर्थपर वैसा कहते हैं। अब अनादि जीवोंके शुभ अशुभ कर्मोंके अनुसार उनके फल भोगनेके लिये प्रकृतिसे कार्य उत्पन्न होते हैं। प्रकृतिसे महत्तत्व अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होती है बुद्धिसे अहंकार। ये भी जड़ द्रव्यही हैं। अहंकारसे ग्यारह इन्द्रिय और पंच तन्मात्र उत्पन्न होते हैं। ये पंच तन्मात्र पृथिव्यादिक स्थूल भूतोंके सूक्ष्मरूप हैं। उनके एक दूसरेके साथ मिलाये जानेसे उनमे पृथिव्यादिक स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। बुद्धि अहंकार और मन इन तीनोंको मिलाके अन्तःकरण कहते हैं। मन उन ग्यारह इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रिय है जो अहंकारसे उत्पन्न हुये हैं। निश्चय करना बुद्धिका धर्म है मैं ऐसा जो प्रत्यय होता है सो अहंकारका धर्म है और संकल्प करना मनका काम है। फिर वे कहते हैं कि पुरुष जो है अर्थात् जीव सो केवल ज्ञानस्वरूप है और इच्छा

प्रयत्न सुख दुःख आदिक केवल अन्तःकरणके धर्म हैं। पर यद्यपि वे पुरुषको ज्ञानस्वरूप मानते हैं तथापि उसकी ज्ञानस्वरूपता केवल नाम मात्र की है क्योंकि वह ज्ञान ऐसा नहीं है जिसको हम सब ज्ञान कहते हैं। क्योंकि हम लोग तो पदार्थोंके जाननेको ज्ञान कहते हैं कि यह घट है यह पट है यह पृथिवी है यह जल है इत्यादि। पर सांख्यके मतसे यह ज्ञान आत्माका रूप नहीं है न यह उसका गुण है परन्तु वह अन्तःकरणहीका एक परिणाम है। वे कहते हैं कि अन्तःकरणही घट पट आदि पदार्थके आकारके समान बन जाता है और इसी परिणामको वृत्ति कहते हैं। सो यह घट है यह पट है ऐसा जो जानना है सो यही अन्तःकरणकी वृत्ति है। अब अनादि कालसे अन्तःकरण और पुरुषकी समीपतासे पुरुषका अन्तःकरणमें और अन्तःकरणका पुरुषमें प्रतिबिंब हो रहा है। इसीलिये घटाकार पटाकारादि जो अन्तःकरणकी वृत्ति हैं उनका पुरुषमें प्रतिबिंब होता है। सो इस प्रकारसे जाननेकी वृत्तिका पुरुषमें प्रतिबिंब होना यही पुरुषका जानना है। सो सांख्यके मतसे चाहो अन्तःकरणकी वृत्तिको जानना कहो चाहो उस वृत्तिके पुरुषमेंके प्रतिबिंबको जानना कहो दोनों प्रकारसे उनके मतके अनुसार जानना पुरुषमें नहीं है अर्थात् वह उसके निज स्वरूपमें नहीं है। इसी

प्रकारसे इच्छा कर्तृत्व आदिक भी अन्तःकरणहीकी वृत्ति हैं और उनका भी पुरुषमें प्रतिबिंब होनेके कारण पुरुष अपनेको अज्ञानसे चाहनेवाला और करनेवाला समझता है इसीलिये शुभाशुभरूप जो कर्म हैं उनके फल जो सुख दुःख स्वर्ग नरक जन्म मरण आदिक हैं सो पुरुषको भोगने पड़ते हैं। क्योंकि पुरुष सच मुच कर्त्ता न होके भी जो अज्ञानसे अपनेको कर्त्ता समझता है इसीसे अपनेको उन शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगनेके बंधनमें ले आता है। सो यही पुरुषका बद्ध होना है। पर जो अभी कहा गया कि इच्छा कर्तृत्व आदिक बुद्धिके धर्मोंके पुरुषमें प्रतिबिंबित होनेसे पुरुष अपनेको अज्ञानसे कर्त्ता समझता है उसका भी यही तात्पर्य जानना चाहिये कि यह समझना भी सच मुच पुरुषमें नहीं रहता। क्योंकि हम कह चुके कि सांख्यके मतसे समझनेका गुण सच मुच पुरुषमें नहीं रहता। परन्तु क्या ज्ञान क्या अज्ञान दोनों अन्तःकरणहीकी वृत्ति हैं। मानों अन्तःकरणही अपनेको और पुरुषको एक समझके और अपने गुण जो इच्छा और कर्तृत्व हैं उनका पुरुष पर आरोप करके कहता है कि मैं चाहता हूं और कर्त्ता हूं। और अन्तःकरणहीके इस अज्ञानरूप वृत्तिका पुरुषमें प्रतिबिंबित होना यही पुरुषका अज्ञानी होना है। सांख्यवाले इस विषयमें अद्भुत२ कल्पना करते हैं

और उनको बड़ी सावधानीसे सुनना चाहिये तभी कुछ समझमें आ सकेंगी। उनकी सब प्रकारसे यह इच्छा है कि आत्माको ज्ञान इच्छादि सब गुणोंसे रहित और निर्गुण ठहरावें इसलिये वे ज्ञानको आत्मामें सर्वथा मानने नहीं चाहते। और अज्ञान भी तो एक प्रकारका ज्ञानही है क्योंकि जो अयथार्थ ज्ञान है उसीको अज्ञान कहते हैं जैसे शुक्तिमें रजतको देखना। यद्यपि यह यथार्थ नहीं है तथापि एक प्रकारका ज्ञानही है। सो सांख्यवालोंको क्या यथार्थ और क्या अयथार्थ दोनों प्रकारके ज्ञानको अन्तःकरणकी वृत्ति अथवा आत्मामेंका उस वृत्तिका प्रतिबिंब करके मानना पड़ता है॥

सो सांख्यवाले जब कहत हैं कि कर्त्तृत्व भी अन्तःकरणहीकी वृत्ति है केवल अज्ञानसे आत्मा अपनेको कर्त्ता मानता है उसका ठीक तात्पर्य पढ़नेवालेकी बुद्धिमें अब प्रगट होगा। सो जैसे ज्ञान इच्छा और कर्त्तृत्वकी बात है वैसेही धर्म अधर्म और सुख दुःखकी बात है। अर्थात् ये सब भी अन्तःकरणहीकी वृत्ति हैं और उनका पुरुषमें प्रतिबिंब होना यही पुरुषका धर्मी अधर्मी और सुखी दुःखी होना है। फिर धर्म अधर्म और सुख दुःखके प्रतिबिंबसे युक्त जो आत्मा है उसके विषयमें जो अन्तःकरणकी वृत्ति होती है वह वृत्ति अथवा उसका आत्मामें प्रतिबिंब होना

यही आत्माका अपनेको धर्मी अधर्मी और सुखी दुःखी मानना है। और यही सब पुरुषका बंध और दुर्दशा है। सो इस दुर्दशासे छूटनेके लिये जो कोई सांख्यशास्त्रका श्रवण मनन निदिध्यासन करेगा और उससे यह विवेक ज्ञान प्राप्त करेगा कि कर्तृत्व भोक्तृत्व तो केवल प्रकृतिके धर्म हैं क्योंकि अन्तःकरण प्रकृतिहीका परिणाम है और पुरुष तो प्रकृतिसे सर्वथा भिन्न है और वह न कर्त्ता है और न भोक्ता है पर शुद्धस्वरूप है तब वह प्रकृतिके बंधनसे छूट जाता है। क्योंकि सांख्यशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि प्रकृतिके समान सुकुमार और कोई वस्तु नहीं है कि जबलों पुरुषने उसको देखा नहीं तबलों तो वह अपने जाल फैलाया करती है पर ज्योंही उसकी कपट लीला देखी जाये त्योंही वह लज्जित होके पुरुषसे ऐसी भागती है कि फिर अपना मुंह नहीं दिखलाती। सो जब पुरुषको ज्ञान हुआ तब उस ज्ञानके प्रभावसे संचित कर्म नष्ट हो जाता है और अब वह अपनेको कर्त्ता नहीं समझता इसलिये जो कुछ क्रियमाण कर्म है अर्थात् वह कर्म जो प्रतिदिन उससे होता जाता है उससे उसको कुछ पाप पुण्य नहीं होते। केवल प्रारब्ध कर्मके भोगलों उसको शरीरमें रहना पड़ता है और जब वुह समाप्त हो चुकेगा तब शरीरको छोड़ेगा और फिर उसको स्वर्ग नरक अथवा जन्मान्तरका

डर नहीं है। क्योंकि अब कोई कर्म उसके पास नहीं है जिसके भोगनेके लिये उसको शरीर पकड़ना हो॥

पर इस विषयमें हमारी ऊपर कही हुई बातका स्मरण रखना चाहिये कि सांख्यके मतसे क्या ज्ञान क्या अज्ञान दोनों सच मुच आत्मामें नहीं हैं पर ये दोनों अन्तःकरणहीके धर्म हैं। इसलिये मैं प्रकृतिसे भिन्न और शुद्ध हूं यह जो ज्ञान है सो भी अन्तःकरणहीकी वृत्ति है और अन्तःकरण तो प्रकृतिका परिणाम है। इसलिये यह समझा चाहिये कि जैसे प्रकृतिही अपने परिणामरूपी अज्ञानसे आत्माको बद्ध करती है वैसे प्रकृतिही अपने परिणामरूप ज्ञानसे उसको मुक्त करती है। इसलिये आत्माको बद्ध और मुक्त करनेवाली प्रकृतिही है। इसी कारणसे सांख्याचार्योंका यह कहना है कि पुरुषके भोग और अपवर्गके लिये प्रकृतिका सारा व्यापार है। बरन सांख्यवाले तो यह भी कहते हैं कि सच मुच पुरुष न बद्ध होता न मुक्त होता है पर बंध और मोक्ष दोनों प्रकृतिहीको होते हैं जैसे ६२ वीं सांख्य कारिकामें स्पष्ट करके कहा है॥

येही सांख्य और योगके मतोंके मुख्य सिद्धान्त हैं। पर उन दोनोंमें इस एक बड़ी बातमें भेद है कि योगमत ईश्वरको मानता है पर सांख्यमत नहीं मानता

जैसे हम आगे कह गये। और जब कि सांख्यवाले ईश्वरको नहीं मानते तो उन्हें मीमांसकोंके समान वेदको अनादि मानना पड़ता है कि वह किसीका बनाया नहीं पर आपसे आप अनादि कालसे बना हुआ है॥

ये सिद्धान्त क्याही अद्भुत हैं। ऐसा बड़ा परिश्रम जो उन्होंने किया है सो इस एक बातके सिद्ध करनेके लिये है कि पुरुषको ज्ञान इच्छा कर्त्तृत्व सुख दुःखादि गुणोंसे रहित ठहरावें। क्योंकि वे कहते हैं कि यदि ज्ञान इच्छादिक गुण पुरुषमें मानें तो यह उसका स्वभावही ठहरेगा तब उसके स्वभावको कौन दूर कर सकेगा और तब उसकी मुक्ति कैसे होगी। क्योंकि सब शास्त्रकारोंके सिद्धान्तसे मुक्तिदशामें ज्ञान इच्छादिसे रहित होना आवश्यक है। क्योंकि उनको ज्ञान इच्छादिकोंसे ऐसा डर है कि वे समझते हैं कि जहां ये हैं तहां सब प्रकारकी दुर्दशा है। और दुःखसे रहित होना तो मुक्तिमें सर्वथा आवश्यकही है। इसीलिये सब शास्त्रकार आत्माको सब प्रकारकी दुर्दशासे छुड़ावनेके लिये चाहते हैं कि उसको ज्ञान इच्छादिसे रहित करनेकी कोई राह निकालें और अपने२ मनसे एक२ राह निकालते हैं। उनमेंसे सांख्यवालोंके मनमें यही आया कि उसको प्रथमहीसे ज्ञान इच्छादि गुण रहित माने बिना नहीं बनेगा।

और इसलिये देखे क्या क्या अद्भुत२ बातें ठहराई हैं। वे इस विषयमें स्वाभाविक बिवेककी सीमाका उल्लंघन करके बहुत दूर भटक गये॥

अब मीमांसा शास्त्रका और दर्शनोंके समान बंध मोक्ष और आत्मानात्मका विचार करनेपर तात्पर्य नहीं है परन्तु केवल वेदके बिधि और कर्म काण्डका बिचार करनेपर है। और उस विषयमें हम उस शास्त्रकी परीक्षा नहीं करने चाहते। पर उस मतकी बिशेष करके यहां चर्चा करनेके लायक बातें जे हैं से ये हैं कि वे ईश्वरके नहीं मानते और वेदके विषयमें कहते हैं कि वह किसीका बनाया नहीं है पर अनादि कालसे ऐसाही है। और जे कुछ उसमें बिधि निषेध और कर्मोंके भले अथवा बुरे फल लिखे हैं उनके सत्य समझते हैं। पर जे कुछ वेदमें देवताओंका बर्णन किया है उसके झूठ मानते हैं और कहते हैं कि वे बातें केवल कर्मकी स्तुति करनेके लिये लिखी हैं। इस बातमें उनका यह आश्चर्य कारक मत है। वेदमें लिखा है कि यज्ञ करनेसे स्वर्ग होता है। और यज्ञ ते इसके कहते हैं कि इन्द्र वरुण अग्नि आदिक देवताओंके अग्निमें घी मांसादिक चढ़ाना और वेदमेंके स्तोत्रोंके पढ़ पढ़के और गा गाके उन देवताओंके कर्मों और गुणोंकी स्तुति गाना। अब मीमांसक कहते हैं कि वे इन्द्रादिक देवता कुछ हैं

ही नहीं और उनके चरित्र केवल स्वप्नवत् हैं। और तथापि वेदके कहेके अनुसार उनके नामसे अग्नि-कुण्डमें आहुतिके गिरनेमें और उनके स्तोत्रोंके अक्षरोंको मुखसे निकालनेमें ऐसा कुछ बिचित्र प्रभाव है कि उससे स्वर्ग प्राप्त हो जाता है॥

नैयायिक और वैशेषिकोंके मुख्य सिद्धान्त ये हैं। वे एक अनादि अनन्त निर्विकार निराकार निरवयव सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ जगत्कर्त्ता सबके प्रभु और जीवोंके कर्मोंके फल दाता ईश्वरको मानते हैं। वह अनादि जीवोंको उनके सत् अथवा असत् कर्मों-का भला अथवा बुरा फल देनेके लिये उपादान कारणरूप पदार्थोंको लेके इस प्रपंचकी रचना प्रति पाल नियमन और नाश करता है जगतके पदार्थोंमें कितनोंको वे अनादि और कितनोंको सादि मानते हैं। पृथिवी जल अग्नि वायुके परमाणुओंको और आकाश काल दिशा मन और आत्माको अनादि कहते हैं। परमाणु उसको कहते हैं जो पृथिवी आ-दिकोंका सबसे छोटा भाग है जो आंखसे देखने अथवा हाथसे छूने अथवा किसी और इन्द्रियसे जाननेके योग्य नहीं और जिसका आगे और बिभाग नहीं हो सक्ता। पर उनके मतके अनुसार वह आपसे आप सदा कालसे अखण्डरूप बना रहता है। इन परमाणुओंके एकट्ठा होनेसे ये जो दृश्य और स्पृश्य

पृथिवी जल आदिक पदार्थ हैं सो बनते हैं इसीलिये ये सबके सब सादि और बिनाशके योग्य भी हैं। नैयायिक और वैशेषिक जीवात्माओंमें ज्ञान इच्छा कृति धर्म्म अधर्म्म सुख दुःख आदिक गुण मानते हैं। और उनको अनादि अनन्त अगणित और शरीर इन्द्रिय और मनसे भिन्न मानते हैं। और उनको सर्वव्यापक भी समझते हैं कि यद्यपि वे केवल शरीरमें होके देख सकते सुन सकते और सब प्रकारके ज्ञान और इच्छादिकोंका अनुभव कर सकते हैं तथापि उनका स्वरूप केवल शरीरसे परिच्छिन्न नहीं है पर वह शरीरके बाहर भी सर्वत्र व्यापके रहता है। फिर दूसरे दर्शनकारोंके समान नैयायिक और वैशेषिक भी कहते हैं कि आत्मा अपनेको अज्ञानसे शरीरादिकोंके साथ एक करके मानता है और इसी अज्ञानसे उसकी सारी दुर्द्दशा है और केवल ज्ञान हीसे उससे छूट कर निःश्रेयसको प्राप्त कर सक्ता है। नैयायिक और वैशेषिक वेदको ईश्वरका बनाया समझते हैं।

ये दर्शनोंके भिन्न२ सिद्धान्तोंमेंसे मुख्य२ सिद्धान्त हैं। इनको छोड़ और भी अनेक बातोंमें उनके भिन्न२ मत हैं परन्तु उनका यहां बर्णन करना आवश्यक नहीं है॥

अब जिस मनुष्यमें कुछ भी बिवेक हो और जिसने

हठ करके सत्यके न माननेमें कमर न बांधी हो वह सहजसे इस बातको जान सक्ता है कि जब ये दर्शन आपसमें एक दूसरेसे विरुद्ध हैं तो ये सबके सब सत्य नहीं हो सक्ते। जब एक मनुष्य एक वस्तुको काली कहता और दूसरा उसीको सफेद कहता है तो प्रगट है कि उन दोनोंमेंसे एक भूलमें है। कितने लोग हैं जो बड़ा परिश्रम करके यह सिद्ध करने चाहते हैं कि षड्दर्शनोंमें कहीं विरोध नहीं है। हम उनसे कहते हैं कि तुम दर्शनोंके मूलसूत्रोंको देखो तो जान पड़ेगा कि वे आपसमें एक दूसरेके मतका नाम ले लेके एक दूसरेका खण्डन करते हैं। और शङ्कराचार्य्यादिकोंके ग्रन्थोंमें देखा है कि एक दूसरेको गालियां भी देते हैं जैसे कि शङ्कराचार्य्य नैयायिकोंको बिना सींग और पूंछके बैल कहता है क्या यह मेलका लक्षण है। सो इस प्रकारसे भिन्न२ दर्शनोंके सिद्धान्तोंका पृथक्२ बिचार किये बिनाही यह बात सिद्ध होती है कि उनमें भूल है और इसीलिये उनके कर्त्ता ऋषियोंकी बुद्धि भी हमारे समान भूलनेवाली थी। परन्तु जब उनके सिद्धान्तोंको पृथक् करके बिचारने लगते हैं तब तो यह बात अधिक स्पष्ट होती है॥

---

३ तीसरा अध्याय।

जिसमें साङ्ख्यके जो ये सिद्धान्त हैं कि ईश्वर नहीं है और तथापि धर्माधर्म और उनके फल हैं और वेद अनादि और अखण्डनीय प्रमाण है उनकी परीक्षा है।

सांख्यवाले ईश्वरको नहीं मानते यह उनकी कैसी बड़ी भूल है। इस जगतकी रचनामें चारों ओर ऐसे अगणित और स्पष्ट चिन्ह हैं जिनसे यह निश्चय होता है कि यह जगत् किसी महापराक्रमी और वर्णनातीत बुद्धिवालेने बुद्धिपूर्वक बनाया है। यह बात तो स्वतः प्रकाशमान है कि किसी प्रयोजनके लिये कोई काम करना चेतनहीका काम है। क्योंकि जो कोई यह जानता हो कि अमुक कामसे अमुक प्रयोजन निकलेगा वही केवल उस प्रयोजनके लिये उस कामको कर सकेगा। इसलिये निश्चित है कि उस कामके कर्त्तामें ज्ञान है और उसीको चेतन कहते हैं। सो जब हम किसी वस्तुको देखें और उसके विचार करनेसे हमको यह निश्चय हो कि यह अमुक प्रयोजनके लिये है तो फिर इस सन्देहकी कुछ भी जगह न रहेगी कि यह किसी चेतनका काम है अथवा नहीं। जैसे यदि हम किसी स्थानमें चार मनुष्योंकी रसोई बनानेके योग्य काष्ठोंकी एक राशि देखें और उतनेही मनुष्योंके योग्य दाल चाउर आटा

घी तर्कारी आदिक पदार्थ भिन्न२ पात्रोंमें रक्खे हुये हों और चूल्हा और भूमि लीप पोतके स्वच्छकी हों तो हम पूछते हैं कि ऐसा कोई भी नास्तिक इस जगतमें मिलेगा जो यह सन्देह करे कि क्या जानिये यह सब सामग्री किसीने रसोंईके प्रयोजनके लिये सिद्ध की है अथवा आपसे आप अकस्मात् बटुर गई है। फिर वैसेही यूरोपीय घड़ीयन्त्रकी बात है कि जो कोई उसके चक्रोंकी रचनाकी परीक्षा करेगा उसको कभी यह सन्देह न होगा कि यह यन्त्र किसीने समय जाननेके प्रयोजनके लिये बनाया है अथवा नहीं। तो हम कहते हैं कि यह जगत तो ऐसे अगणित पदार्थोंसे भरा हुआ है कि जिनकी परीक्षा करनेसे यह निश्चय होता है कि ये पदार्थ अमुक२ प्रयोजनके लिये बने हैं। इसमें यह भी एक बात समझना चाहिये कि यदि किसी सामग्रीमें भिन्न२ प्रकारके अनेक पदार्थ न हों जो सब मिलके एक प्रयोजनको सिद्ध करते हों परन्तु कोई पदार्थ अकेलाही किसी प्रयोजनको उत्पन्न कर सक्ता हो तो उसके बिषयमें यह सन्देह हो सक्ता है कि क्या जानिये इसको किसीने प्रयोजनके लिये रक्खा है अथवा अकस्मात् यहां पड़ा है। जैसा यदि किसी स्थानमें एक अथवा दो लकड़ी पड़ी हों तो उनके देखनेसे निश्चय नहीं होता कि किसीने इनको रसोंईहीके लिये धरा है

यद्यपि उनसे भी रसोंईका प्रयोजन निकल सक्ता है। क्योंकि हो सक्ता है कि वे लकड़ियां किसीके हाथसे वहां गिर पड़ी हों। और जैसा उनसे हम रसोंईका प्रयोजन निकाल सक्ते हैं वैसेही और प्रयोजन भी निकाल सक्ते हैं। जैसा कि हम उनको लेके कुत्तेको हांक सक्ते हैं अथवा आवश्यक हो तो पृथिवीमें गाड़के खूंटी बना सक्ते हैं। परन्तु यह कोई निश्चय करके न कह सकेगा कि वे लकड़ियां इनमेंसे किसी एक प्रयोजनके लिये धरी हैं। परन्तु जब लकड़ी और पानी और दाल और आटा आदिक अनेक पदार्थों-को देखते हैं तब तो कुछ सन्देह नहीं रहता पर निश्चय होता है कि यह सब सामान रसोंईहीके लिये है। और इस निश्चयका मूल यह है कि उनमेंसे हर एक पदार्थ अपने२ भागमें रसोंईका संपादक है और यह एक निश्चय है कि एकही प्रयोजनके उप-योगी इतने अनेक पदार्थ अपने२ योग्य भागके समान अपने२ योग्य स्थानमें बिना किसीके जुहाये अकस्मात् कदापि एकट्ठे नहीं हो सक्ते। वैसेही इस जगतमें अगणित पदार्थ हैं जो ऐसे नहीं हैं कि केवल और अमिश्रित होके किसी२ प्रयोजनको निकालते हैं। तब तो शंका होती कि केवल आकस्मिक घटनासे इनसे यह प्रयोजन निकल आता है। पर वे पदार्थ ऐसे हैं कि अनेक सूक्ष्म और स्थूल अवयवोंसे मिले हुये हैं।

और उनमेंसे हर एक अवयव अपने२ भागमें एक प्रयोजनके सिद्ध करनेके लिये आवश्यक है। और हर एक अवयव अपने२ योग्य परिमाणसे और योग्य स्थानमें धरा हुआ है और योग्य द्रव्यसे बना है। जैसे कि घड़ीका जो अवयव लोहेसे चाहिये सो अवयव लोहेसे और जो पीतलसे चाहिये सो पीतलसे और कोई चीनीसे और कोई शीशेसे बना रहता है। और यद्यपि इस जगतमेंके अनेक अद्भुत पदार्थोंको हम लोग आजतक अच्छी तरहसे नहीं जान सक्ते थे तथापि यूरोपके पण्डितोंने अपनी सूक्ष्म बुद्धि और बड़े२ खोज और परिश्रम और अनेक यन्त्रोंके द्वारासे शरीर और वृक्षादिकोंकी रचना और भूगोल और खगोल और जल पवन तेज आदि तत्वोंके स्वरूप और भेद और गुण आदिकोंकी ऐसी परीक्षा की है कि जो कोई अब उनके ग्रंथोंको पढ़ता है उसको एक दिव्य दृष्टिसी हो जाती है और उसको चारों ओर ईश्वरकी अचिन्त्य शक्ति और बड़ी कुशलताके अगणित चिन्ह देख पड़ते हैं। जैसे यदि केवल मनुष्यके नेत्रकी परीक्षा करें तो उसीमें ऐसी अद्भुत कारीगरी देख पड़ती है कि कुछ कह नहीं सक्ते। नेत्रकी रचनामें और दूर्बीनकी रचनामें कुछ समानता है तथापि दूर्बीनकी कारीगरी नेत्रकी कारीगरीके साम्हने तुच्छ है। दृष्टि विद्याके परीक्षकोंने इस बातको

अच्छे प्रकारसे निश्चित किया है कि जिस पदार्थको नेत्रके द्वारा देखना है उस पदार्थका प्रतिबिम्ब नेत्रके तलमें पड़ना अवश्य है सो इस प्रयोजनके सिद्ध करनेके लिये नेत्रकी सारी रचना ऐसी कुशलतासे भरी है कि बुद्धि चकित हो जाती है। इस नेत्रमें अनेक पड़दे हैं और वे ऐसे हिसाबसे जड़े हैं और ऐसे द्रव्योंसे बने हैं कि जिससे वह इष्ट प्रयोजन सिद्ध होवे। फिर इसके भीतर अनेक अवयव हैं और उनमें कितने ऐसे सूक्ष्म हैं कि मैक्रास्कोपनामें शीशेकी सहायता बिना देख नहीं पड़ते। पर उन सबकी बनावट और जड़न और परिमाण ठीक हिसाबके साथ है। फिर दूरके और समीपके पदार्थोंके और अधिक और कम प्रकाशमेंके पदार्थोंके देख पड़नेके लिये जो जो अद्भुत उपाय उसमें रचे हैं और आकाशमें उड़नेवाले और पानीमें चलनेवाले आदि जीवोंको अपनी२ दशाके समान पदार्थ देख पड़नेके लिये जो जो भिन्न२ रचना और ऐसी२ अनेक बातें जो नेत्रके विषयमें हैं यदि उनको संपूर्ण यहां लिखें तो इसी एक बात पर बड़ा ग्रंथ हो जायगा। तो हम कहते हैं कि यदि रसोईकी सामग्री और घड़ी यन्त्रको देखनेसे कर्त्ताके विषयमें सन्देह नहीं रहता तो इस सृष्टिके ऐसे२ पदार्थोंको देखके क्यों उनके कर्त्ताके विषयमें सन्देह होता है। क्योंकि जो वहां कर्त्ताका

निश्चय होनेका कारण हैं वैसाही ठीक यहांभी है। पर यदि कोई कहे कि हमको रसोंईकी सामग्रीके कर्त्ताका निश्चय होता है पर सृष्टिके पदार्थोंके कर्त्ताका नहीं होता तो हम कहते हैं कि इसका कारण केवल यही है कि वह अपनी उन्मत्ततासे चाहता नहीं कि परमेश्वरका होना सिद्ध होवे और इसीलिये वह इस बातके बिचारमें अपने मनको अच्छी रीतिसे पैठाता नहीं और इस कारणसे यह बात उसके मनमें प्रगट नहीं होती॥

कितने लोग बिचार न करके जल्दीसे कह बैठते हैं कि रसोंईकी सामग्री और घड़ी आदिके विषयमें कर्त्ताको हम इसलिये मानते हैं कि हमने लोगोंको रसोंईकी सामग्री जुहाते और घड़ी बनाते देखा है पर जगतको बनाते हमने किसीको कभी नहीं देखा इसलिये उसके कर्त्ताको हम नहीं मानते। पर हम कहते हैं कि क्या यदि यहां कभी किसीने किसीको घड़ी बनाते न देखा होता और न यहां उसको कोई बना सक्ता और तथापि यदि कोई इस देशका मनुष्य घड़ी देखता और उसके सब अवयवोंकी जड़न और हर एकके प्रयोजनको बिचारता तो क्या वह यह न मानता कि यह पदार्थ किसी महा बुद्धिमानने बनाया है। जानो कि कर्त्ताके माननेका कारण किसीको करते देखना नहीं है परन्तु वही है जो हमने पहिले

बताया अर्थात् जब यह देखनेमें आता है कि इतने अनेक पदार्थ जिनमेंसे हर एक अपने२ भागमें अमुक प्रयोजनके लिये आवश्यक है यहां योग्य परिमाणसे और योग्य स्थानमें एकत्र किये गये हैं। क्योंकि बुद्धि यह कहती है कि बिना किसीने जान बूझके इनको एकत्र किये इन सबका इस हिसाबसे एकत्र होना अनहोना है॥

कितने लोग स्वभाव इस शब्दको ऐसा महा मन्त्र समझते हैं कि मानो इसके कहतेही सब शंका दूर हो सक्ती हैं। वे कहते हैं कि यह एक स्वभाव है कि मनुष्यके बीजसे मनुष्यका शरीर उत्पन्न होवे जैसे गेहूंके बीजसे गेहूं होता है। पर हम उनसे पूछते हैं कि यह स्वभाव कोई चेतन वस्तु तो नहीं है कि जिसमें समझ बूझ इच्छा आदि गुण होवें तब वह ऐसा काम क्योंकर कर सकेगा जिसमें कि समझ बूझ और मनसूबाके स्पष्ट लक्षण देख पड़ते हैं। जो लोग इस प्रकारसे स्वभावका नाम लेते हैं वे प्रगट करते हैं कि उन्होंने हमारी युक्तिका जो मुख्य बल है उसको समझाही नहीं। हमारी युक्तिका मुख्य बल इस बात- में है हम कहते हैं कि सृष्टिमेंके शरीरादि पदार्थोंके विचारनेसे स्पष्ट जान पड़ता है कि इसकी रचना अमुक२ प्रयोजनके लिये है और उसके उपयोगी इसमें बड़ी कारीगरी और हिसाबके साथ जड़न

देख पड़ती है। और यह निश्चित है कि प्रयोजनके लिये कोई काम करना और उसके योग्य अनेक पदार्थोंकी ठीक हिसाबके साथ रचना करना चेतनके सिवाय किसीसे नहीं हो सक्ता इसलिये चेतन कर्त्ता सिद्ध होता है। पर स्वभाव कहनेसे क्योंकर इसका उत्तर होगा। क्या स्वभाव इस बातको मनमें ला सक्ता है कि मुझको अमुक काम करना है और क्या उसको इस बातका ज्ञान है कि ऐसी२ रचना करनेसे यह प्रयोजन सिद्ध होगा। क्योंकि यदि वह ऐसा कर सके तो फिर वही ईश्वर ठहरा तब तो तुममें हममें नाम-ही भरका भेद ठहरा। और यदि ऐसा नहीं परन्तु वह एक जड़ और ज्ञानरहित और समझरहित पदार्थ है तो उससे यह काम नहीं हो सकेगा। क्योंकि तुम्ही थोड़ा सूक्ष्म बिचार करके देखो कि यद्यपि हम यह बात मान भी लें कि हवामें यह स्वभाव है कि एक स्थानसे मट्टीको उड़ाके दूसरे स्थानमें गिरा दे पर क्या यह बात कभी मनमें आ सक्ती है कि हवा आपसे आप एक सुन्दर सुथरा घर बनावे अथवा आग आपसे आप दाल रोटी तर्कारी आदि पकावे॥

पर इस बिषयमें लोगोंके अबिश्वासका मुख्य कारण यही है कि वे परमेश्वरको अपने हाथसे सृष्टिके काम करते नहीं देखते। पर हम उनसे पूछते हैं कि भला जब कोई खेत गोड़नेके लिये कुदारी उठाता है तो

उसको तो अपने हाथोंसे उठाता है परन्तु जिन हाथोंसे कुदारीको उठाता है उन हाथोंको किन हाथोंसे उठाता है। क्या उनको केवल इच्छासे नहीं उठाता। और क्या वह इच्छा अदृश्य और मनुष्योंकी आंखोंसे गुप्त नहीं है। वैसेही निश्चय करो कि परमेश्वर भी अपनी अदृश्य इच्छा और शक्तिसे सब कार्य करता है॥

सांख्यवालोंकी अद्भुत बात देखो। वे कहते हैं कि प्रकृतिही पुरुषके उपभोगके लिये अनेक काम करती है और फिर इस बातके सिद्ध करनेके लिये यह दृष्टान्त ले आते हैं कि दूध यद्यपि जड़ पदार्थ है तथापि वत्सके पोषणके लिये गायके स्तनोंमें प्रगट होता है। पर यह तो एक बाधित वस्तुके सिद्ध करनेके लिये दूसरी बाधित वस्तुको प्रमाण ठहराना है। क्योंकि हम आगे दिखा चुके हैं कि किसी प्रयोजनके लिये कोई काम करना यह बात चेतनके सिवाय किसीसे होही नहीं सक्ती। वाह जब मनुष्य अपने मनको कठोर करके नास्तिकता पर कमर बांधता है तो कैसा अंधा हो जाता है कि जो बात ईश्वरके सिद्ध होनेके लिये अशंकनीय प्रमाण है उसीको सांख्य-वालोंने ईश्वरकी अस्तिका खण्डन करनेका अस्त्र बनाया। क्योंकि वत्सके लिये स्तनोंमें दुग्धका होना और ऐसी२ अनेक बातोंके देखनेसे यह निश्चय होता

है कि ईश्वर है श्रीर ये सब उसीके कार्य हैं पर सांख्यवाले उसीको इस बातका प्रमाण बनाते हैं कि यह सारा जगत जिसमेंकी सब बातें प्रयोजनके लिये हैं एक जड़ प्रकृतिका बनाया हुआ है॥

फिर सांख्यकी अति आश्चर्यजनक भूल इसमें देख पड़ती है कि यद्यपि वे ईश्वरको नहीं मानते तथापि पाप पुण्यको श्रीर उनके फलोंको मानते हैं श्रीर अनेकविध कर्मकाण्ड श्रीर जप तप श्रीर ध्यान धारणादिकोंका जूआ मनुष्योंके कन्धों पर रखते हैं। हम तो यह समझते हैं कि सब आस्तिक मतोंका मूल श्रीर उसमेंकी मुख्य श्रीर प्रथम बात ईश्वर है। क्योंकि ईश्वर नहीं तो विधि अथवा निषेध करनेवाला कौन होगा। फिर स्वर्ग नरक भी कहां। क्योंकि सुकर्म श्रीर कुकर्मका फल अथवा दण्ड देनेहारा कौन है। पर हम जानते हैं कि इस विषयमें इस देशके सारे शास्त्रकारोंमें एक साधारण भूल है कि वे धर्म अधर्म श्रीर उनके फलोंका बिचार करते२ इस बातको भूल गये कि धर्म श्रीर अधर्मसे जो शुभ श्रीर अशुभ फल होते हैं सो केवल इस प्रकारसे होते हैं कि ईश्वरने धर्मकी आज्ञा दी है श्रीर अधर्मको वर्जा है इसलिये वह आज्ञापालकों पर प्रसन्न होके उनको शुभ फल देता है श्रीर आज्ञाभञ्जकोंको अपने न्यायी स्वभावके कारणसे दण्ड देता है। इस बातको बिसराके

दर्शनकर्त्ता उन कर्मोंहीमें बीजादिकोंकी नाईं कोई स्वाभाविक फल देनेकी शक्ति मानने लगे। यद्यपि यह भूल न्यायादिकोंमें स्पष्ट नहीं देख पड़ती तथापि सांख्य और मीमांसामें खुलाखली प्रगट होती है। इस बड़ी भूलका हम आगे कुछ निरूपण करेंगे॥

फिर सांख्यवाले वेदको अनादि मानते हैं अर्थात् यह समझते हैं कि वेदको किसीने बनाया नहीं पर वह आपसे आप सदा कालसे ऐसाही बना है यह भी क्याही आश्चर्यकी बात है। यदि उनसे पूछें कि ऐसा माननेके लिये क्या प्रमाण है तो कहते हैं कि वेदका बनानेवाला कोई प्रसिद्ध नहीं है। पर यह कौन प्रमाण है। ऐसे तो बहुत ग्रन्थ हैं जिनके बनानेवालेका नाम कोई नहीं जानते तो क्या इससे यह सिद्ध होता है कि वे सब अनादि हैं। किसी पुराने घरके बनानेवालेका नाम किसीको मालूम न हो तो क्या इससे वह घर अनादि ठहरेगा। फिर कोई ग्रन्थ अनादि होही नहीं सक्ता। क्योंकि जैसा हमने ईश्वरकी अस्ति सिद्ध करनेमें कहा कि रसोईकी सामग्री देखनेसे निश्चय होता है कि ये सब अनेक पदार्थ रसोईहीके प्रयोजनके लिये एकत्र किये गये हैं तैसेही ग्रन्थमेंके अनेक वाक्यों पदों और अक्षरोंकी योग्य अन्वय और क्रमके साथ रचना देखनेसे भी यह निश्चय होता है कि अमुक अर्थके प्रगट करनेके

प्रयोजनहीके लिये ये सब एकत्र किये गये हैं। वे वाक्य पद और अक्षर मानों पुकारके कहते हैं कि हम अमुक अर्थ प्रगट करने चाहते हैं। पर यह तो स्पष्ट है कि किसी अभिप्रायको प्रगट करने चाहना चेतनका काम है जड़का नहीं इसलिये निश्चय है कि किसी चेतनहीने उन वाक्यों पदों और अक्षरोंकी उस क्रमके साथ रचना की है। क्योंकि इन दो बातोंमेंसे एक बात हमसे कहो कि वेदके वाक्योंका किसी अभिप्रायके प्रगट करने पर तात्पर्य्य है अथवा नहीं। यदि है तो यह काम चेतन पुरुषहीका है। पर यदि कहो कि किसी अभिप्रायके प्रगट करने पर उनका तात्पर्य्य नहीं है तो सारा वेद अर्थरहित ठहरा। तब ऐसा ग्रन्थ विधि अथवा निषेध क्योंकर कर सक्ता और सुकर्म्म कुकर्म्मके फलोंका सन्देश क्योंकर दे सक्ता है। इस बातको तो बालक भी जान सकेगा कि कोई आज्ञा देना अथवा कुछ बात बताना चेतनका काम है जड़ पदार्थका नहीं॥

---

४ चौथा अध्याय।

जिसमें साङ्ख्यके जो ये सिद्धान्त हैं कि प्रकृति जगत्का उपादान कारण है और ज्ञान इच्छा कर्तृत्व सुख दुःख आदिक गुण आत्मामें नहीं हैं उनकी परीक्षा है।

अब सांख्यका प्रकृतिवाद भी हमको अत्यन्त निर्यक्तिक जान पड़ता है। इससे न्यायशास्त्रका पर-

माणुवाद अच्छा है। हम यह नहीं कहते कि न्याय-शास्त्रका यह कहना सच है कि अनादि परमाणुओंसे सृष्टिकी रचना हुई है। क्योंकि ईश्वरको छोड़ हम किसी दूसरे पदार्थको अनादि नहीं मानते परन्तु यह कहते हैं कि कुछ भी उपादान न रहतेही परमेश्वरने अपने अचिन्त्य सामर्थ्यसे सब कुछ उत्पन्न किया। पर यहां हमारा तात्पर्य यह है कि यदि कोई इस प्रकारसे बिना उपादानके सृष्टिका बनना न मानें तो उसके लिये हमारी समझमें परमाणुवादसे और कोई सयुक्तिक मत नहीं हो सक्ता। क्योंकि यदि हम मानें कि उपादानहीसे सृष्टि होती है तो परमाणुकी सिद्धि तो युक्तिसे हो सक्ती है। क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि स्थूल पृथिवी आदिक पदार्थ अनेक भागोंसे बने हैं और इन भागोंके उत्तरोत्तर अल्प२ बिभागोंकी परमाणुओंमें विश्रान्ति मानना अवश्य है। परन्तु प्रकृति महत्तत्व अहंकार इत्यादिकोंकी सिद्धिके लिये कौनसी युक्ति है। तुम कहते हो कि यह जगत् सुख दुःख मोहरूप है और ये तो सत्व रज तमके धर्म हैं इसलिये यह बात अवश्य मानना चाहिये कि इस जगत्का जो उपादान कारण है सो सत्व रज तमसे मिला हुआ है और वही प्रकृति है। पर यह ठीक नहीं। क्योंकि सुख दुःख और मोह जगतके पदार्थोंमें नहीं रहते पर ये सब चेतनके गुण हैं और

उसीमें रहते हैं। इस बातको हम आगे चलके सिद्ध करेंगे। पर जगतके पदार्थ तो चेतनमें सुख दुःखादिकोंके उत्पन्न होनेका कारण हो सक्ते हैं। जैसे अग्निको स्पर्श करनेसे हमको दुःख होता है परन्तु अग्निही दुःख नहीं है पर केवल हमारे दुःखका कारण है। यही तो सांख्यवालोंकी अद्भुत भूल है कि ज्ञान इच्छा सुख दुःख आदिक पदार्थ जो केवल आत्माके गुण हैं और आत्माहीमें रहते और स्वतन्त्र रीतिसे नहीं रह सक्ते उनको जगतमें ठहराते हैं और कहते हैं कि जैसा यह जगत् है वैसाही कोई उसका उपादान कारण चाहिये और वही प्रकृति है। इस प्रकारसे आत्माको जड़ और जगत और उसके उपादान कारणको चेतन बनाते हैं। और यद्यपि उनको चेतन बनाते हैं तथापि कहते हैं कि प्रकृति महत्तत्वादिक केवल जड़ द्रव्य हैं। तो ऐसे अद्भुत पदार्थ किसी युक्तिसे नहीं सिद्ध हो सकते। परन्तु सत्व रज तम बुद्धि अहंकार इन शब्दोंका जो योग्य अर्थ है उसीको यदि तुम मानो तो हम कहते हैं कि तुम्हारे प्रकृति महत्तत्वादिक पदार्थ सिद्ध हैं। क्योंकि सत्व रज और तम तो जीवहीकी भिन्न२ दशा हैं। जब जीवका ज्ञान प्रज्वलित रहता है और वह शान्ति और स्थिरताका अनुभव करता है तब उसको सत्वस्थ कहना चाहिये जब वह चंचलताकी दशामें रहता और बाह्य विषयों-

को ओर अत्यन्त आसक्त होता है तब उसको रजःस्थ कहो जब मूढ़ताकी दशामें होता है तब तमःस्थ कहो। और यदि येही सत्व रज और तम प्रकृतिका रूप है तो हम कहते हैं कि यह प्रकृति जीवहीकी एक प्रकृति अर्थात् स्वभाव ठहरा। फिर महत्तत्व बुद्धिको कहते हो और बुद्धि आत्माका गुण है। अहंकार तो मैं ऐसा प्रत्यय है वहभी आत्माहीमें होता है। सो इस प्रकारसे प्रकृति महत्तत्वादिक पदार्थ सिद्ध हैं पर वे जगतका उपादान कारण नहीं हो सक्ते और न जगतकी उत्पत्तिसे और उनसे कुछ सम्बंध है॥

सांख्यवालोंका जो इस विषयमें ऐसा अद्भुत मत हो गया है इसका जो कारण हुआ हो उसका हम निश्चय करके वर्णन तो नहीं कर सक्ते। तथापि यहांके पण्डितोंकी बुद्धि और उनके तर्क करनेकी रीतिके देखनेसे एक कारण हमको अटकलसे जान पड़ता है उसको हम लिखते हैं। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि यह निरीश्वरवादी सांख्य मत पहिलेसे यहां न था। क्योंकि मनुसंहिता और गीता आदिकोंमें यद्यपि सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके वर्णनमें सांख्यकी प्रक्रिया देख पड़ती है तथापि उनमें ईश्वरको भी जगत्कर्त्ता करके माना है। इससे हमको यह जान पड़ता है कि पहिले पहिल लोगोंने सेश्वर सांख्यका मत निकाला तब पीछेसे होते२ निरीश्वर सांख्यका मत निकला। पर

पहिले जो सेश्वर सांख्यका मत प्रगट हुआ उसका मूल कदाचित् यह हुआ होगा। पहिले पहिल लोग ऐसा समझने लगे कि जगतकी सृष्टि पालन और संहार करना रज सत्व और तमका काम है अर्थात् जब परमेश्वर रज आदि गुणोंको पकड़ता है तभी सृष्टि आदिक काम करता है। इसी मूलसे पीछेसे पुराणादिकोंके समयमें ब्रह्मा विष्णु और शिवनामें त्रिदेवोंका मत निकला। फिर सृष्टिके समयमें ईश्वर-के विषय वेदमें ऐसा लिखा है कि "स ऐक्षत" उसने देखा "एकोहं बहु स्याम्" मैं एक हूं बहुत हो जाऊं। तो इन वेद वाक्योंसे सृष्टिके समय ईश्वरका देखना और मैं हूं ऐसा अहं प्रत्यय सिद्ध होता है। और यहां देखना बुद्धिका धर्म है और अहं प्रत्यय अहंकार-का धर्म है। तिस परसे अगले लोगोंने यह ठहराया होगा कि ईश्वरने सृष्टि करनेके लिये बुद्धिका और अहंकारका अवलम्ब किया। क्योंकि उनके मतके समान जब सृष्टि नहीं रहती तब तो ईश्वर केवल निर्गुणताकी दशामें रहता है तब उसमें जानना और अहं प्रत्यय इत्यादि नहीं रहते। सो इस प्रकारसे अगले समयके लोग ईश्वरहीकी राजस आदि दशाको और उसीके बुद्धि अहंकारको कदाचित् जगतका कारण मानने लगे होंगे। यदि कोई पूछे कि इस प्रकारसे उन्होंने सत्व रज तम और बुद्धि अहं-

कारादिकोंको जगतका कारण माना भी हो तथापि वह केवल निमित्त कारण ठहरा परन्तु सांख्य शास्त्रमें जो उनको उपादान करके माना है इसका क्या कारण ठहराते हो। तो उसका उत्तर यह है कि यही तो यहांके पण्डितोंकी बुद्धिका दोष है वे किसी नामको बहुत काल लों व्यवहार करते करते उसका मुख्यार्थ भूल जाते हैं और दूसरा अर्थ समझने लगते हैं। जो पदार्थ केवल धर्म्म रूप हैं और धर्म्मीसे पृथक् कभी नहीं रह सकते उनकी चर्चा कुछ काल लों करते करते उनको भी स्वतंत्र धर्मीरूप मानने लगते हैं। जैसे धर्म्माधर्म्म जो केवल परंपरासे सुख दुःखके कारण हैं अर्थात् उनके अनुसार ईश्वर अपनी इच्छा-से मनुष्योंको भला अथवा बुरा फल देता है और वे केवल मनुष्यके क्रिया रूप हैं उनको मीमांसक और सांख्य सुख दुःख और सारे संसारके स्वतंत्र और साक्षात् कारण ठहराके ईश्वरकी सत्ताको अनावश्यक कहने लगे। इसी प्रकारसे सत्वादिकोंको और बुद्धि और अहंकारको जगतका निमित्त कारण कहते कहते उनको स्वतंत्र धर्म्मी रूप समझके जगतका उपादान कारणही ठहराया। और गुणोंका स्वतंत्र धर्म्मी रूप बरन उनको चेतनव्यक्ति रूप समझनेकी भूल हिन्दु-ओंके यहां और बातोंमें भी देख पड़ती है। जैसे पुराणादिकोंमें काम क्रोध शान्ति सन्तोष आदि गुणों-

की स्वतंच सृष्टि और उनके परस्पर बिवाहादिकोंका भी बर्णन देख पड़ता है। फिर कई स्थानोंमें ऐसे ऐसे गुणोंको पूजनेका भी विधि है। फिर यह दोष केवल हिन्दुओंहीमें था ऐसा नहीं परन्तु प्राचीन ग्रीक आदिक लोगोंमें भी था। जैसे ख्रिस्तीय शकके द्वितीय तृतीयादिक शतकोंमें वालन्टीनस् और वासिलैडीस् इत्यादिक पाषण्ड मत बादी हुए उनके ग्रन्थोंसे ज्ञान पड़ता है कि वे बुद्धि इच्छा आदि गुणोंको चेतनव्यक्ति और सृष्टिके कर्ता मानते थे। सो हमको ऐसा जान पड़ता है कि ऐसीही कुछ सांख्यवालोंकी भी दशा भई। सो जिस कारणसे पहिले लोग सत्वादिकोंको जगतका कारण मानते थे उसको जब सर्वथा बिसरा दिया और उनको औरही प्रकारसे जगतके कारण मानने लगे तो प्रगट है कि उन शब्दोंका अर्थ भी उन्होंने पहिलेसे कुछ औरही प्रकारका ठहराया और उनको जड़ पदार्थ रूप मानने लगे और सत्वादि तीन गुणोंको मिलाके प्रकृति नाम रक्खा। फिर जब पीछेसे देखा कि इस प्रकृतिहीसे सारे जगत-की उत्पत्ति हो सकती है तो कहा अब ईश्वरका भी क्या काम। सो इसी प्रकारसे यह सांख्य नामक नया मत खड़ा हुआ होगा और होते होते सब बातोंमें उसके सिद्धान्त यहां लों बदल गये होंगे कि आरंभमें यह जिस मतसे निकला उससे और इससे कुछ भी

समानता न रही। ये बातें जो केवल अटकलकी रीतिसे इस समय हमारे मनमें आईं सो लिख दी हैं॥

अब हम कहते हैं कि तुम जो ज्ञान इच्छा कर्त्तृत्व सुख और दुःखको आत्माके गुण नहीं मानते परन्तु अन्तःकरणकी वृत्ति अथवा प्रतिबिम्ब करके मानते हो यह भी सर्वथा बाधित बात है। हम तो यह समझते हैं कि जानना चाहना करना इत्यादिक चेतनके गुण हैं और जिसमें ये गुण हैं वही चेतन कहलाता है और वही आत्मा है। पर कदाचित् तुम कहो कि हमारी बोलीमें वही आत्मा कहलाता है जो ज्ञानादि गुणोंसे रहित हो तो हम कहते हैं कि ऐसे आत्माका होना किसी प्रकारसे नहीं सिद्ध हो सकेगा। और कदाचित् तुम अनेक मिथ्या तर्कोंको लाकर अपनी समझमें एक ऐसा ज्ञानादि रहित पदार्थ सिद्ध करो और उसका नाम आत्मा रक्खो तथापि इतना जानो कि वह तुम्हारा कल्पित आत्मा हम तुम नहीं हैं। क्योंकि यह तो निश्चित है कि हम तुम जानते हैं चाहते हैं सुख दुःख भोगते हैं अर्थात् ज्ञान इच्छादिक गुण हममें तुममें हैं। और यह जो हमारा तुम्हारा अनुभव है सो भ्रम रूप कभी नहीं हो सकता। क्योंकि भ्रम तब कहलाता है जब ज्ञान हो और विषय न हो। जैसे जब शुक्तिमें रजत देख पड़ता है तब रजत-विषयक ज्ञान तो है पर रजतरूपी विषय नहीं है।

पर हमारा जो ज्ञान इच्छादि विषयक अनुभव है उसमें ऐसी बात नहीं हो सकती। क्योंकि यहां ज्ञान और विषय एकही हैं। जैसे जब प्रकाश घट पट आदि पदार्थोंको प्रकाशित करता है तब प्रकाश प्रकाशक है और घट पट आदि प्रकाश्य हैं पर जब हम प्रकाशही को देखते हैं तब तो वह आपही प्रकाशक और प्रकाश्य भी है। वैसेही जब मुझको इच्छा उत्पन्न होती है तो वुह इच्छाही आप अपना प्रकाश करती है। क्योंकि मैं कहता हूं कि मैं अमुक वस्तु चाहता हूं। तो इसमें प्रगट है कि मैं एकही समयमें चाहता भी हूं और अपने चाहनेको जानता भी हूं पर यदि चाहना और चाहनेको जानना भिन्न वस्तु होते तो एकही समय आत्मामें न उत्पन्न हो सकते॥

फिर मैं चाहता हूं और सुख दुःख भोगता हूं इत्यादि अनुभव यदि भ्रम ठहरे तो फिर इच्छा सुख दुःख आदि पदार्थही कुछ न ठहरेंगे। क्योंकि उनका होना तो केवल इसी अनुभवसे सिद्ध होता है। पर यदि कहो कि मैं चाहता हूं इत्यादि ज्ञानको हम केवल इस अंशमें भ्रम कहते हैं कि वे हैं तो दूसरेके धर्म पर दूसरेमें भासते हैं अर्थात् अन्तःकरणके धर्म होके आत्मामें भासते हैं। तो हम कहते हैं कि यह कैसी बात है। तुम बतलाते हो कि मैं ऐसा कहना अन्तःकरणहीका धर्म्म है और इच्छा सुखादिक भी

उसीके धर्म्म हैं तो इससे तो यही प्रगट हुआ कि जिसके धर्म्म उसी पर भासते हैं तव इस अंशमें कहां भ्रम हुआ। पर हम जानते हैं कि तुम्हारे इस अद्भुत मतका गूढ़ तत्व इस बातमें है कि तुम कहते हो कि मैं ऐसा कहना तो अन्तःकरणहीका धर्म्म है पर वह आत्माको अपनेसे अभिन्न समझके उसको मैं कहता है और अपने इच्छादिक धर्म्मोंको उसपर लगाता है और यही भ्रम है। तो हम कहते हैं कि यह तो भाई भटकनेकी परा काष्ठा है। क्या यह हो सकता है कि मैं ऐसा प्रत्यय जिसको होता है वह किसी दूसरेके विषयमें ऐसा प्रत्यय करे। यह तो निश्चित है कि मैं ऐसा प्रत्यय करनेवाला जब मैं ऐसा कहता है तो अपनेही आत्माके विषयमें कहता है। क्योंकि जगत् भरेमें मैं इस शब्दसे अधिक कोई दूसरा शब्द अपने आत्माका बोधक नहीं हो सकता। सो मैं यह शब्द यदि अपने आत्माका बोधक है तो कहो कि मैं इस प्रत्ययका जो आश्रय है उसको छोड़ दूसरी कौन वस्तु मैं ऐसा कहनेवालेका आत्मा हो सकता है। हमारी समझमें जैसे यह कहना कि दीपका प्रकाश किसी दूसरी वस्तुसे निकलता है अथवा एक मनुष्यकी छाया दूसरे मनुष्यसे प्रगट होती है वैसाही यह कहना है कि कोई अपने सिवाय दूसरेके विषयमें आप ऐसा अनुभव कर सके। क्योंकि ऐसा भ्रम होने-

की यहां जगाही नहीं। क्योंकि मैं इस प्रत्ययका विषय आपही है और जिसमें यह प्रत्यय उत्पन्न होता है वही उसका आप है पर जो वस्तु उससे भिन्न है उसमें तो वह प्रत्यय नहीं है और जिसमें वह प्रत्यय नहीं है वह उस प्रत्ययका विषयही नहीं। पर भ्रम तो उसीको कहते हैं जहां प्रत्यय हो पर उसका विषय न हो॥

पर कदाचित् तुम कहो कि शरीरादिक जो आत्मा-से भिन्न हैं उनको भी मनुष्य बहुधा अपना निज स्वरूप मानते हैं क्योंकि यदि ऐसा न होता तो मैं काला हूं गोरा हूं ऐसा न कहते तो इससे सिद्ध होता है कि मैं ऐसा प्रत्यय दूसरे पदार्थके विषयमें भी होता है। तो हम कहते हैं कि ऐसा नहीं। क्योंकि मनुष्य जो शरीरको मैं कहते हैं सो प्रत्यक्षानुभवसे नहीं कहते पर अनुमितिसे कहते हैं। पर कोई कहे कि यह कैसी बात है मनुष्य तो अपनी आंखसे अपने शरीरको देखके कहते हैं कि मैं काला अथवा गोरा हूं। तो हम कहते हैं कि शरीरको तो अपनी आंखसे देखते हैं कि काला अथवा गोरा है पर वह काला अथवा गोरा शरीर मैं हूं ऐसा ज्ञान उनको प्रत्यक्षसे नहीं होता। क्योंकि मैं ऐसा जो आत्मिक प्रत्यय है उसमें न शरीर न उसके काले पन न गोरे पनका भान हो सकता है। इसलिये यह जानो कि मैं ऐसे

आत्मिक प्रत्यक्षसे लोग केवल अपने निज स्वरूपही-को जानते हैं और नेत्रादिके द्वारासे जैसे घट पट आदिको जानते हैं वैसाही शरीरको भी जानते हैं। और जब यह देखते हैं कि शरीरके विकारोंसे आत्माको भी सुख दुःख आदिका अनुभव होता है तब यह अनुमिति करते हैं कि इस शरीरका और आत्माका कोई अत्यंत दृढ़ संबंध है। और इस संबंध-के कारणसे शरीर और आत्मामें केवल आरोपित एकत्व मानके गौणार्थमें ऐसा व्यवहार करते हैं कि मैं काला अथवा गोरा हूं। क्योंकि हमारी समझमें जिन मनुष्योंमें कुछ भी विवेक हो वे बहुधा शरीरको सच मुच आत्मा नहीं समझते। क्या कभी कभी मनुष्य अपनी सम्पत्तिके क्षीण होनेसे ऐसा नहीं कहते कि हम इन दिनोंमें क्षीण हो गए तो क्या इससे यह सिद्ध होता है कि वे लोग अपनी सम्पत्तिको सच मुच आपही समझते हैं। पर कदाचित् यदि कितने अज्ञानी सच मुच शरीरको आत्माही समझते हों तथापि यह निश्चय है कि यह उनका भ्रम प्रत्यक्षरूप नहीं पर अनुमितिरूप है। अपने विचारसे वे यह ठहराते हैं कि शरीरके द्वारा आत्माको सुख दुःख होते हैं इसलिये शरीर भी हमारा आत्मा है। मैं यह अनुभव आत्मिक प्रत्यक्षसे होता है पर उसमें शरीरादिकोंका ग्रहण नहीं हो सकता। फिर शरी-

रादिकोंका ग्रहण नेत्रादि इन्द्रियोंसे होता है पर वे इन्द्रिय आत्माका ग्रहण नहीं करते। इसलिये आत्मा और शरीरको मिलाना केवल अनुमानका काम है प्रत्यक्षका नहीं। तो हमने जो बात कही सो ठीक है कि मैं ऐसा जो आत्मिक प्रत्यक्ष है उसमें अपने सिवाय दूसरे किसीका ग्रहण नहीं हो सकता। और न वह प्रत्यय भ्रम रूप हो सकता है। और जैसा मैं ऐसा आत्मिक प्रत्यक्ष दूसरेका ग्रहण नहीं कर सकता वैसेही अपने इच्छा सुख दुःख आदि गुण आत्मिक प्रत्यक्षसे दूसरेमें नहीं भासते। क्योंकि हम कह चुके कि इच्छादि गुण आपही अपने प्रकाशक हैं सो वे जहां हैं तहीं भासेंगे दूसरेमें उनका भास क्योंकर हो सकेगा। फिर जब कि मैं ऐसा आत्मिक प्रत्यक्षका केवल आपही विषय हो सकता है तो जो इच्छा सुख दुःखादिक दूसरेमें भासेंगे उनके विषयमें मैं चाहता हूं मैं सुखी हूं इत्यादिक आत्मिक प्रत्यक्ष कैसे होगा॥

पर भला हम अपने इन तर्कोंको छोड़के यदि तुम्हारीही बात मानें कि जब हम हम ऐसा कहते हैं तो तुम्हारे उस अद्भुत पदार्थको जिसका नाम तुमने आत्मा रक्खा है अपनेमें मिलाते हैं तो तुम्हारे कहनेके अनुसार यह हमारी भूल ठहरी तो तुम्हारे इस उपदेशसे हमको वही बात और भी दृढ़तासे माननी पड़ी कि तुम्हारा वह कल्पित आत्मा हम तुम

नहीं हैं। सो जब कि वह तुम्हारा कल्पित आत्मा हम तुम नहीं हैं तो उससे हमसे क्या काम हमको तो अपनीही मुक्तिके लिये चिंता करनी है। और वह आत्मा तो न बद्ध हो सकता न मुक्त हो सकता है क्योंकि जिसको ज्ञान नहीं उसको दुःख भी नहीं हो सकता तब उससे मुक्त होना उसको कहांसे होगा। और यदि इस अन्तःकरणने उसको आप समझके अपनी इच्छा सुख दुःखोंको भूलसे उस पर रोपा तो इससे उसकी क्या हानि है। यदि कोई मनुष्य आप ज्वरित होके भूलसे समझे कि मैं ज्वरित हुआ हूं तो मुझे कौन चिंता है॥

पर सच बात यह है कि यद्यपि सांख्यवाले एक ओर कहते हैं कि हम आत्माके स्वरूपमें ज्ञान इच्छा सुख दुःख आदिक गुण नहीं मानते तथापि दूसरी ओर वे यह भी देखते हैं कि आत्मामें ज्ञान इच्छादिकोंके माने बिना नहीं बनता। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि आत्मा न जानता न चाहता न सुख दुःख भोगता है तो हम उसको बद्ध नहीं कह सकते तब उसकी मुक्तिके लिये जो सब सांख्य शास्त्रका पसारा है उसका क्या काम ठहरेगा। इसलिये वे चाहते हैं कि ज्ञान इच्छादिकोंको आत्माके गुण न मानके भी किसी न किसी प्रकारसे आत्माको जाननेवाला और चाहनेवाला और सुखी दुःखी ठहरावें इसीलिये

कहते हैं कि ज्ञान इच्छादिक प्रतिबिंब रूप होके आत्मामें रहते हैं और इसी प्रकारसे उसको ज्ञानादिकोंका भोग देते हैं। पर हम कहते हैं कि ज्ञान इच्छादिकोंका उपभोग लेना क्या वस्तु है यही कि जानना चाहना और सुखी दुःखी होना। पर ज्ञान इच्छादिक यदि केवल प्रतिबिंब रूप होके आत्मामें रहें तो उस करके वह जाननेवाला और चाहनेवाला आदिक नहीं हो सकता। क्योंकि ज्ञान इच्छादिक जाननेवाले और चाहनेवालेके गुण हैं और केवल उसी संबंधसे उसमें रहते हैं जिस संबंधसे गुण गुणीमें रहता है। यह बात स्वतःप्रकाशमान है कि ज्ञान इच्छादिक जाननेवाले और चाहनेवालेके गुण हैं। क्योंकि गुण वही कहलाता है जिसकी अपने आश्रयसे पृथक् होके स्थिति नहीं हो सकती बरन ऐसी स्थितिकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। जैसे हम कभी ऐसी कल्पना नहीं कर सकते कि रूप अथवा रस अथवा दीर्घता अथवा विस्तार अपने आश्रयसे पृथक् होके स्वतंत्र रीतिसे रह सकते हैं। वैसेही हम इसकी भी कल्पना नहीं कर सकते कि जानना और चाहना अथवा सुख दुःख जाननेवाले और चाहनेवाले और सुखी और दुःखीसे पृथक् होके स्वतंत्र रीतिसे रह सकते हैं। बरन ऐसे पदार्थ बंध्यापुत्र और शशशृंगके समान ठहरेंगे। सो यह निश्चित है कि ज्ञान

इच्छादिक गुण हैं और इसलिये वे अपने आश्रयमें केवल उसी संबन्धसे रहते हैं जिससे कि गुण गुणीमें रहता है। पर प्रतिबिंब तो ऐसे संबंधसे अपने आ-श्रयमें नहीं रहता। क्योंकि यह बात निश्चित है कि दर्पणमें जो प्रतिबिंब रहता सो संयोग संबंधहीसे रहता है। क्योंकि प्रतिबिंब तो सूर्यादि किरणोंका एक परिणामविशेष है और सूर्यादि किरणोंका दर्पण-के साथ संयोग संबंधही है। पर तुम कहोगे कि हम जो आत्मामें प्रतिबिंब कहते हैं सो कुछ ठीक दर्पणके प्रतिबिंबके ऐसा नहीं ठहराते। तो हम कहते हैं कि तुम उस प्रतिबिंबको जैसा चाहो तैसा ठहराओ परन्तु यदि वह आत्माका गुण नहीं है और न उस संबंधसे आत्मामें रहता है जिस संबंधसे गुण गुणीमें रहता है तो वह एक बाह्य पदार्थही ठहरा और आत्मामें उसकी स्थिति संयोगहीके ऐसे कुछ संबंधसे माननी पड़ेगी। वह प्रतिबिंब केवल आत्माका आधेय ठहरा और आत्मा उसका आधार ठहरा तथापि वह आत्माके स्वरूपसे पृथक् और बाह्य पदार्थही ठहरा। पर गुण तो अपने आश्रयके स्वरूपमें निविष्ट और मानों उसमें भागी होके रहता है। नैयायिक लोग गुण गुणीके संबंधको समवाय संबंध कहते हैं। पर उस समवाय संबंधका जो जो वर्णन उनके यहां है सो हमको ठीक नहीं जान पड़ता इसलिये हम

उस संबंधको न समवाय कहते हैं न और कोई नाम रखते हैं न उसका विस्तार पूर्वक वर्णन करने चाहते हैं। क्योंकि यह जो गुण गुणीके संबंधका विषय है सो बड़ा गहन है इसलिये इसके संपूर्ण तत्वका वर्णन करना और सब प्रश्नोंका उत्तर देना बड़ा कठिन है। पर सर्वशक्तिमान परमेश्वरकी सृष्टिमेंके सब विषय ऐसेही हैं तथापि हमको क्या करना चाहिये। यही कि जहां लों हमारा अनुभव हमको निश्चय देता है तहां लों हमको बोलना चाहिये और उसके विरुद्ध कोई बात न मानना चाहिये और जहां हमारी बुद्धि रुक जाती है तहां चुप हो रहना चाहिये। सो यह बात अनुभवसिद्ध है कि गुण गुणीका जो संबंध है सो संयोगादि सकल संबंधसे अत्यंत विलक्षण है बरन वह ऐसा कुछ संबंध है कि जिस करके गुण गुणीके स्वरूपमें निविष्ट होके और उसका भागी होके रहता है। परन्तु जो वस्तु संयोगादि संबंधसे किसी पर रहती है सो उसके स्वरूपमें निविष्ट नहीं है। और यद्यपि वह उसके शरीरमें घुस जाय तथापि वह उसके स्वरूपमें निविष्ट नहीं होती। क्योंकि यद्यपि हम एक लाठीको लेके पृथिवीमें गाड़ें तथापि वह पृथिवीके स्वरूपमें निविष्ट न होगी बरन पृथिवीके भागोंको हटाके और अपने लिये अवकाश बनाके उसमें रहेगी। इसलिये यद्यपि वह लाठी देशतः

पृथिवीके भीतर कहलावे तथापि स्वरूपतः उससे बाह्य है। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि रूप रस दीर्घत्व कठिनत्वादि गुण जो गुणीमें रहते हैं सो औरही प्रकारसे रहते हैं वे उसके स्वरूपमें निविष्ट बरन उसमें भागी होके रहते हैं क्योंकि हम गुण और गुणी-के स्वरूपोंकी पृथक् स्थितिकी कल्पना भी नहीं कर सकते। वैसाही यह निश्चित है कि ज्ञान इच्छादि गुण आत्मामें उसी प्रकारसे रहते हैं। यदि ज्ञान इच्छा-दिक आत्माके निज स्वरूपमें न रहें तो आत्मा क्योंकर जाननेवाला और चाहनेवाला होगा। प्रतिबिंब यद्यपि आत्मामें रहे बरन ऐसा उसमें घुसके रहे जैसा चीनी पानीमें तथापि वह केवल देशतः उसके अत्यन्त निकट ठहरा परन्तु स्वरूपतः उससे बाह्य और ऐसा दूर है कि जैसे पूर्व पश्चिमसे। तो भला उसके होनेसे आत्मा जाननेवाला चाहनेवाला इत्यादि क्योंकर हो सकेगा। क्योंकि यदि उसने अपने निज स्वरूपसे न जाना तो आप न जाना और यदि आप न जाना तो उसने जानाही नहीं। यदि एक महाविद्यावान् पुरुष किसी मूर्खको चिपकके बैठे बरन दृढ़तासे उसको लिपट भी जाय तो क्या इससे वह मूर्ख भी विद्याका अनुभव कर सकेगा। यूरोपीय पण्डित जिन्होंने श्रवण और दर्शन आदि पदार्थोंके तत्वकी बहुत कुछ परीक्षा की है कहते हैं कि जब मनुष्य किसी पदार्थको

नेत्रके द्वारा जानता है तो उसमें ये बातें होती हैं कि प्रथम उस पदार्थका प्रतिबिंब प्रकाशके द्वारा नेत्रके तलमें लिखा जाता है और उसके पीछे एक ज्ञान रज्जु है जो नेत्रसे मगजलों पंहुची है सो उस प्रतिबिंबसे उस ज्ञान रज्जुमें कुछ कार्य उत्पन्न होता है और उस ज्ञान रज्जुके द्वारासे मगजमें कुछ कार्य हो जाता है। मगजसे और हमारी चेतनशक्तिसे ऐसा कुछ अनिर्वाच्य संबन्ध ईश्वरने रक्खा है कि मगजमें उस कार्यके होतेही आत्माको उस पदार्थका ज्ञान होता है। अब यद्यपि हम नहीं बता सकते कि ईश्वरने यहां किस प्रकारसे जड़ और चेतनकी गांठ बाधी है और किस प्रकारसे जड़ वस्तुके द्वारासे आत्मामें ज्ञान उत्पन्न होता है। पर इतना निश्चय करके जानते हैं कि प्रथम उस पदार्थका प्रतिबिंब नेत्रमें होना यह आत्माका जानना नहीं है और न उस प्रतिबिंबके द्वारासे ज्ञान रज्जुमें कार्य होना वह वस्तु है और ज्ञान रज्जुके द्वारासे मगजमें कार्य होना भी आत्माका जानना नहीं है। क्योंकि यद्यपि मगजसे और चेतन शक्तिसे बड़ाही निकटका संबंध है तथापि वह उससे पृथक् और बाह्य है। पर इन सब नेत्रादि पदार्थोंके द्वारा जो आत्मा आप अर्थात् अपने स्वरूपसे उस पदार्थके स्वरूपका ग्रहण करता है उसीके विषयमें कहा जाता है कि आत्मा उसको जानता है।

सो तुम्हारे वे ज्ञान इच्छा कृति सुख दुःखकी वृत्तियों-के प्रतिबिंब यदि आत्माके निज स्वरूपसे भिन्न हैं तो वे आत्माका जानना चाहना करना सुखी दुःखी होना नहीं हैं क्योंकि यद्यपि वे देशतः आत्माके अत्यंत निकट हैं तथापि स्वरूपतः आत्मासे इतना दूर हैं जितनी पश्चिम पूर्वसे है अथवा जितना मगज चेतन शक्तिसे। सो इन बातोंसे यह सिद्ध हुआ कि सांख्यकी रीतिसे आत्मा न जानता न चाहता न करता न सुखी दुःखी होता है तो फिर किसको मुक्त करनेके लिये सांख्य शास्त्रका पसारा है॥

पर इसका ठीक उत्तर वही है जो सांख्यवाले आप मान लेते हैं जैसा ६२ बासठवीं सांख्य कारिकामें लिखा है कि सच मुच प्रकृतिही बद्ध और मुक्त होती है। तथापि वे लोग पुरुषको भी किसी न किसी प्रकारसे संसारमें फंसा हुआ ठहरानेके लिये कहते हैं कि पुरुषपर बंध मोक्षका आरोप होता है। पर यह उनकी बात अत्यंत बेठिकानेकी है और जिस अर्थके लिये वे इस बातको कहते हैं वह अर्थ इससे नहीं सिद्ध होता। क्योंकि उनके सिद्धांतके अनुसार पुरुषपर बंध मोक्षका आरोप करना भी तो प्रकृतिही-का सच मुच काम है यद्यपि सांख्यवालोंके इस विषयमें निरुपाय होनेसे उनके मुखसे ऐसी बोली निकलती है कि मानों पुरुष आप अपने पर यह आरोप करता

है। पर यह बात उन्हीके सिद्धांतके विरुद्ध है। सो यदि प्रकृति भूल करके पुरुष पर बंध मोक्षका आरोप करे तो इसमें पुरुषकी क्या हानि हो सकती है। सो वही बात सच ठहरती है जो हमने पहिले कही कि सांख्यवालोंका जो अंतःकरण है सोही हम तुम हैं पर उनका जो कल्पित आत्मा है उससे हमसे कुछ संबंध नहीं बरन वह कुछ पदार्थही नहीं. सिद्ध हो सकता। सो सांख्यवालोंकी दशा उस चतुर बढ़ईके समान है जिसने श्रोरोंकी बनाई लकड़ीकी पुतलीको बेडौल श्रोर भद्दी जान कर चाहा कि मैं इसको सुंदर श्रोर सुकुमार बनाऊंगा श्रोर उसको तराषते तराषते यहां तक सूक्ष्म किया कि वह वायुरूप हो गई तब कहा कि हां अब यह बहुत सुकुमार श्रोर निर्दोष बनी॥

यहां हम एक बात कहने चाहते हैं कि सांख्यवाले जो ज्ञान इच्छादिकोंको प्रतिबिंब प्रतिबिंब करके पुकारते हैं इससे कोई यह न समझे कि इस प्रतिबिंब शब्दसे उनका अभिप्राय वही है जो हम सभोंका है। कि मानो वे प्रतिबिंब शब्दको केवल लाक्षणिक समझते हैं श्रोर यह मानते हैं कि आत्माको सच मुच घट आदि पदार्थोंके विषयमें ज्ञान श्रोर इच्छा होती हैं श्रोर उन्हीं ज्ञान श्रोर इच्छादिकोंको उत्प्रेक्षा करके कहते हैं कि मानो वह घटादि विषयोंका आत्मामें प्रतिबिंब

है। कोई न जाने कि सांख्यवालोंका यह अभिप्राय है यदि ऐसाही वे कहते तो उनके और हमारे कहनेमें क्या भेद रहता। और यदि उनका हमारा अभिप्राय एकही होता तो हम केवल शब्द पर झगड़ा न करते क्योंकि हम तो आप मान लेते हैं कि आत्माका रूप ऐसा गहन है कि उसके योग्य हमारे पास शब्द नहीं हैं। और इसलिये हम सभोंको केवल उन शब्दोंको लेना पड़ता है जो कि अनात्म वस्तुओंके बोधक हैं और उन्हींसे गौणार्थमें आत्मिक वस्तुओंका वर्णन करना पड़ता है। जैसे हम कहते हैं कि आत्माका रूप अथवा स्वरूप पर उससे हमारा तात्पर्य नहीं है कि आत्मामें कोई रक्त पीत आदि लोकप्रसिद्ध रूप है। यदि सांख्यवाले ज्ञान इच्छादि गुणोंको सच मुच आत्माके गुण करके मानते और केवल आत्माहीके गुण मानते तो नैयायिकों-से उनकी अधिकता किस बातमें ठहरती। और तब उनका वह अहंकार कहां रहता कि नैयायिकोंकी दृष्टि केवल स्थूल और बाह्य है क्योंकि यद्यपि उन्होंने शरीर और इन्द्रियादिकोंसे आत्माको भिन्न समझके केवल नास्तिक और लौकिक पुरुषोंसे अधिक बुद्धि प्रगट की परन्तु उन्होंने आत्माको ज्ञान इच्छा कर्तृत्व आदि गुणोंसे युक्त मान कर अन्तःकरणहीको आत्मा ठह-राया और इस प्रकारसे आत्माके निज स्वरूप तक न

पहुंचे। सांख्य लोग तो चाहते हैं कि ज्ञान इच्छादि गुणोंकी छूत भी आत्माको न होने देवें पर उसको उनसे रहित और शुद्ध ठहरावें। इसलिये यह बात निश्चित है कि वे प्रतिबिंब शब्दसे और जो चाहें सो समझें पर उनके मतसे वह आत्माका गुण नहीं है और न आत्मामें उस संबंधसे रहता है जिससे गुण गुणीमें रहता है॥

हम वेदान्तके बिचारमें दिखावेंगे कि यद्यपि वेदान्ती जगत्को मिथ्या समझते हैं तथापि जगत्की अनिवार्य सत्यता बरबस उनके मुखसे बार२ ऐसी बातें निकलवाती हैं कि मानों वे जगत्को सत्यही समझते हैं। वैसेही आत्मामें ज्ञान इच्छा कर्तृत्व सुख दुःख हैं यह बात तो स्वतः प्रकाशमान और अनिवार्य है इसलिये यद्यपि सांख्यवाले यह समझते हैं कि आत्मामें वे गुण नहीं हैं तथापि उनके मुखसे आपसे आप बार२ ऐसी बातें निकलती हैं कि मानों वे उन गुणोंको आत्मामें मानतेही हैं। और बिना माने कभी बनेगाही नहीं और सच मुच वे मानतेही हैं पर वे आप अपने मनके निश्चयको नहीं जानते पर धोखा खाके समझते हैं कि हम नहीं मानते और उस न माननेको सिद्ध करनेके लिये जो अद्भुत तर्क ले आते उसमें उनकी अत्यन्त विरुद्धता और भूल प्रगट होती है। इसलिये हम इस ग्रन्थके पढ़नेवालेसे बिनती

करते हैं कि यदि उसको सांख्यके ग्रन्थोंमें कई एक ऐसे बचन देख पड़ें जो हमारे बर्णनसे बिरुद्ध हों तो वह झट पट हम पर दोष न लगावे पर सांख्य-तत्त्व कौमुदी ऐसे सांख्यके किसी प्रामाणिक ग्रन्थको संपूर्ण शब्द२ अक्षर२ करके पढ़े और उसका तात्पर्य समझे और तब यदि हमारी बातमें कोई बिरुद्धता देख पड़े तो हम स्वीकार करनेको सिद्ध हैं॥

सांख्यवाले जो आत्माको ज्ञान इच्छादिकोंसे रहित करनेके लिये ऐसा बड़ा परिश्रम करते हैं सो इसलिये है। वे समझते कि यदि हम आत्माके निज स्वरूपमें ज्ञान इच्छा सुख दुःखादिक गुण मानें तो वह उसका स्वभावही ठहरेगा और जिसका जो स्वभाव है सो दूर नहीं हो सकता। इसलिये ज्ञान इच्छा सुख दुःखादिक भी आत्मासे दूर न होगें तब उसकी मुक्ति कैसे होगी। क्योंकि इस देशके सब पण्डितोंकी दृष्टिमें बिना जड़ रूप भये मुक्ति नहीं हो सकती। और मुक्तिमें दुःखका दूर होना तो आवश्यकही है॥

अब हम कहते हैं कि यद्यपि यह कल्पना ठीक भी हो कि बिना ज्ञानके खोये मुक्ति नहीं होती और यदि दुःख आत्माका गुण हो तो वह कभी दूर न हो सकेगा तथापि यह योग्य नहीं है कि इस भीतिसे जो बात सच मुच एक प्रकारकी है उसको मिथ्या तर्कोंसे और प्रकारकी बताना अर्थात् ज्ञान इच्छादिक

गुण जो सच मुच आत्मामें हैं उनके विषयमें बरबस यह कहना कि वे नहीं हैं। हम जानते हैं कि मनुष्य मरनेवाला है पर क्या इस मरणके भयसे हम अपनेको जो सच मुच मनुष्य हैं कहें कि नहीं हैं और क्या इससे मरणसे भी बच सकेंगे। सो यदि तुम्हारी समझमें ज्ञान इच्छादिक जिसके गुण हैं उसको यह घोर अनिष्ट भोगना है कि वह कभी ज्ञानादिकोंसे रहित न होगा तो बुद्धिका काम यह है कि इसमें निरुपायता देखके चुप हो रहो न कि बरबस वस्तुको अवस्तु करने लगो। पर सच बात यह है कि पण्डितोंकी यह कल्पना निर्मूल है कि बिना ज्ञानके खोए मुक्ति नहीं हो सकती। और सांख्यका यह कहना व्यर्थ है कि दुःख जिसका गुण है वह कभी दुःख रहित न हो सकेगा। क्योंकि दुःखके कारण दूर होनेसे दुःख दूर होता है और सर्वशक्तिमान परमेश्वर जिस पर अनुग्रह करेगा उसके विषयमें ऐसा कर सकेगा इसका प्रतिपादन हम न्याय शास्त्रके विचार करनेमें करेंगे॥

---

५ पांचवां अध्याय।

जिसमें मीमांसा शास्त्रकी एक बातका थोड़ासा बिचार और यहांके पण्डितोंकी बुद्धिका और उनकी तर्क करनेकी रीतिका कुछ बयान है।

मीमांसकोंकी बड़ी भूल इन बातोंमें है कि वे ईश्वर-

के नहीं मानते और ईश्वरके न मानके भी धर्मा-
धर्मका बिभेद मानते और क्रिया कर्म्मोंका बोझ
मनुष्योंके शिर पर रखते और वेदको अनादि मानते
हैं। पर इन तीनों बातोंका बिचार सांख्यकी परीक्षामें
हो चुका। इसलिये अब मीमांसाकी केवल एक बात-
की थोड़ीसी चर्चा करते हैं। और वह बात यह है॥

मीमांसाका वेदको अन्यत प्रमाण करके समझना
और तिस पर भी उसमेंकी सब देवताओं और
उनकी कथाओंको किस्सा कहानी ठहराना वैसेही
इन्द्रके न रहते भी इन्द्रके नामसे अर्पण करनेको
महाफलदायी समझना आश्चर्यकी बात है। भाइयो,
हम तो वेदकी बातोंको नहीं मानते और विशेष
करके उसमेंके देवताओंको सच नहीं जानते। परन्तु
जिसके मनमें कुछ भी बिवेकका अंश बाकी हो और
यदि वह वेदको पढ़े तो क्योंकर कह सकेगा कि
जिन्होंने इन्द्रादिकोंके नामसे वेदोंके सूक्त बनाए वे
आप उन देवताओंको सच न समझते थे। फिर
किसकी समझमें यह बात आ सकती कि झूंठी देवता
पूजी जाय और कुछ नहीं की स्तुति किई जाय और
बड़े बड़े फलोंकी प्राप्तिके लिये शून्यसे प्रार्थना की जाय॥

मीमांसक ऐसी अचंभेकी बातको जो मानते हैं
इसका कारण यह है। वे कहते हैं कि सारा बखेड़ा
फलकी प्राप्तिके लिये है और वह फल कर्मके अधीन

है और कर्मका ज्ञान वेदके विधि वाक्यसे होता है। तो इन तीन बातोंको मानो औरका क्या काम। इसलिये विधि वाक्यको सच समझना फिर वेदमें की और बातें झूठ ठहरें तो हमारी क्या हानि है। और यदि कर्महीसे फल होता है तो उसीको थांभो देवता आदिकोंसे हमको क्या काम। फिर यदि कर्मही चित्र विचित्र फलोंका उत्पादक है तो जैसे बीजमें अंकुर उत्पन्न करनेकी स्वाभाविक शक्ति है वैसेही कर्ममें भी स्वाभाविक शक्ति माननेसे हम सारे संसार-के बननेका निर्बाह कर सकते हैं तब ईश्वरकी भी क्या आवश्यकता। ऐसे ऐसे विलक्षण तर्कोंका खंडन करना कुछ आवश्यक नहीं। उनकी चर्चा करनाही उनका खंडन है। तथापि धर्माधर्मके विषयमें पण्डितोंकी जो भूल है उसका कुछ बर्णन हम पीछेसे करेंगे तब उसमें मीमांसकोंके इन तर्कोंका उत्तर हो जायगा॥

यही सब सांख्य योग और मीमांसाके मुख्य मुख्य सिद्धान्तोंकी परीक्षा है जो इस अध्यायमें और तीसरे और चौथे अध्यायमें की गई। जिस मनुष्यका स्वा-भाविक विवेक नष्ट नहीं हुआ है वह यदि सांख्य मीमांसाकी ये बातें देखेगा तो उसको प्रगट होगा कि पण्डित लोगोंकी तर्क करनेकी रीति कैसी कच्ची है और यद्यपि न्याय और वैशेषिक शास्त्रकी बातें इनसे बहुत अच्छी हैं तथापि यहांके पण्डितोंकी बुद्धिका जो

साधारण दोष है सो उनमें भी है यह बात न्याय और वैशेषिककी परीक्षामें प्रगट होगी ॥

पण्डित लोगोंकी बुद्धिमें यह एक बड़ी दुर्बलता देख पड़ती है कि जो बातें स्वतःप्रकाशमान हैं उनके विषयमें भी उनको भ्रम होता है। जब किसीकी यह दशा भई तब उसको समझाना अत्यन्त कठिन है। यदि किसी मनुष्यको यह सन्देह हो कि मनुष्योंके हाथ और पांवोंकी अंगुलियां सब मिलाके बीस हैं अथवा नहीं तो ऐसे संदेहीको कौन बोध कर सकेगा। पर भला कदाचित् एक एक करके उसको सब गिनके देखाई जावें पर तथापि यदि वह संदेह करके कहे कि इस प्रकारसे एक एक करके गिननेसे जो बीस होती हैं वे सच मुच बीसही हैं यह मैं कैसे निश्चय करूं तो ऐसे मनुष्यका समाधान करनेकी कुछ भी आशा नहीं है। ऊपर जो हमने सांख्य और मीमांसाकी कितनी बातें दिखाईं सो ऐसीही हैं इसलिये उनका उत्तर देना कठिन होता है। तथापि हमने कुछ प्रयत्न करके उत्तर दिये हैं। और वे उत्तर यद्यपि बहुत स्पष्ट हैं तथापि यहांके लोगोंके स्वभावको हम कई बारके अनुभवसे जानते हैं कि उन उत्तरोंकी स्पष्ट बातोंको भी वे नहीं समझ सकते और इसका सत्य कारण यह है कि वे समझने चाहते नहीं। सो जो लोग ऐसे हैं उनके विषयमें हम बुद्धिकी राहसे तो

सर्वथा निराश हैं। पर परमेश्वरसे उनके लिये भी प्रार्थना करते हैं। क्योंकि जो मनुष्यको अशक्य है सो भी उसको शक्य है॥

पण्डितोंकी बुद्धिकी यह भी एक दुर्बलता है कि वे जिन विषयोंको बिचारने चाहते हैं उनके विषयमें पहिले अपना मन स्थिर करके यह नहीं विचारते कि इन बातोंमें हमारा और जगतका ठीक ठीक अनुभव क्या है। परन्तु इस बातमें उनकी बुद्धि ऐसी कुछ मोहित होती है और अपने इष्ट मतके पक्षपातसे उनकी बिचारदृष्टि ऐसी एकदेशी हो जाती है कि वे निर्मूल नियमोंको बड़ा पूर्ण नियम समझते और अपूर्ण दृष्टान्तोंको प्रमाण ठहराते हैं और उनके अनुसारसे तर्क करने लगते और यह नहीं विचारते कि ये तर्क प्रबल हैं अथवा दुर्बल हैं और उनके बिरुद्ध भी दूसरे तर्क हैं अथवा नहीं। और एक बातसे दूसरी बात स्थापित करते जाते हैं यद्यपि वे कैसी भी बेठिकानेकी क्यों न हों॥

फिर और एक उनकी बुद्धिका दोष यह भी है कि वे पहिले यह नहीं विचारते कि कौन बातें मनुष्योंकी बुद्धिकी सीमाके भीतर हैं और कौन बाहर हैं पर वे इस परिमित मानुष बुद्धिहीके सूत्रसे परमेश्वरकी अचिन्त्य शक्तिकी सब गहन और गंभीर बातोंको भी मापने चाहते हैं और उनकी इयत्ता ठहराने चाहते

हैं। तो जो कोई ऐसा करने चाहेगा वह अवश्य ठोकर खावेगा॥

पर वे लोग जो स्वाभाविक बिवेकका पीछा करते हैं सो बहुधा ऐसी ऐसी भूलोंसे बचे रहते हैं। स्वाभाविक बिवेक वह पदार्थ है जो प्रायः सब मनुष्योंमें रहता है। और उसीकी सहायतासे अपढ़े और ग्राम्य जन भी अपने नित्य व्यवहारमें सत् और असत्का और हित और अहितका निर्णय कर सकते हैं। परन्तु उसका पीछा छोड़के जब कोई चाहता है कि बड़े बड़े तर्कोंको लाकर अपनी इष्ट बातको सिद्ध करे तो ऐसी भूलके जंगलमें भटकने लगता है कि उसको आकाश नीचे और पृथिवी ऊपर दिखाने लगती है। सो उस स्वाभाविक बिवेकका पीछा करनेकी यहांके पण्डितोंकी रीति नहीं है इसलिये ऐसे चमत्कारी सिद्धान्त उनको सूझ पड़ते हैं॥

उनके तर्क करनेकी रीति पर यह एक दृष्टांत हमें सूझता है। दो मनुष्य यात्रा करते थे। उन्होंने एक दिन आपुसमें ऐसा पण किया कि एक दूसरेको कहने लगा कि देख कल मैं बड़े तड़के उठकर तुझसे पहिले मंजिल पर पहुचूंगा। सो ऐसा हुआ कि दूसरे दिन उनमेंसे एकने उठके देखा कि मेरा संगी तो अभी सोआ है सो बहुत हर्षित होके पगड़ी अंगा पहिन गठरी बांध वहांसे चला। एक भूल उससे हुई कि

जलदीमें अपनी पगड़ी छोड़के अपने संगीकी पगड़ी पहिन ली। सो बड़े बेगसे चलके मंजिल पर पहुंचा और देखा कि मेरे संगीका अबलों पता नहीं है। जब बैठके गठरी खोली और अर्सी निकालके अपना मुख देखा तो क्या देखता कि मेरे संगीकी पगड़ी मेरे सिर पर है तो तुरंत अर्सीको नीचे पटकके हाय हाय करने लगा कि देखो मैंने इतना परिश्रम किया कि उससे पहिले मंजिल पर पहुचूं पर अन्तको वही पहुंचा। उसके विलापको देखके एक जन आकर उसे समझाने लगा कि अरे यह तू क्या करता है तू तो साक्षात् आपही बैठा है और कैसे कहता है कि अंतको वही आया। देख ऐसे अंधेरकी बात कहीं हो सकती है कि तेरा अहंप्रत्यय दूसरेमें जाय। पर वह एक भी नहीं मानता। उसने यह नियम देखा था कि जिसके सिर पर यह पगड़ी है वह वही है सो उस नियमके अनुसार उसने यह सिद्धांत ठहराया कि जब कि यह पगड़ी मेरे सिर पर है तो मैं वही हूं और जबसे मैंने पिछले मुकामको छोड़ा तबसे जो मैं अपनेको आप करके समझ रहा था सो केवल भ्रम था॥

यहां षड्दर्शन दर्पणका प्रथमभाग समाप्त भया॥

---

२ दूसरा भाग

जिसमें न्याय और वैशेषिककी परीक्षा है ॥

---

१ प्रथम अध्याय।

जिसमें थोड़ीसी भूमिका और न्याय वैशेषिकका जो ईश्वर विषयक मत है उसकी परीक्षा है।

अब हम न्याय और वैशेषिक शास्त्रका विचार करते हैं। पर हमने आगे दिखाया है कि शास्त्रोंमें बहुतसे सिद्धान्त ऐसे हैं कि जो प्रायः सभोंमें समान हैं इसलिये न्याय और वैशेषिक शास्त्रका विचार करनेमें जो जो सिद्धान्त इनमें और दूसरे शास्त्रोंमें समान हैं उनके विषयमें दूसरे शास्त्रोंका भी विचार हो जायगा ॥

हमने आरंभमें कहा कि प्रायः सब दर्शनकर्ता अपने अपने दर्शनोंके लिखनेका मुख्य प्रयोजन निःश्रेयस प्राप्तिही प्रगट करते हैं। और न्याय और वैशेषिक सूत्रके आरंभमें यह बात स्पष्ट करके कही है। इस बातको तो हम प्रशंसाके योग्य समझते हैं। क्योंकि सब मनुष्योंको अत्यन्त उचित और सब बातों-से अधिक आवश्यक है कि सर्व प्रयत्नसे निस्तारके उपायका खोज करें। परन्तु वे लोग ज्ञानहीको जो निस्तारका मुख्य कारण समझते हैं इसमें हमारी

सम्मति नहीं है। हमारी समझमें केवल ईश्वरका स्वतंत्र अनुग्रहही निस्तारका मुख्य कारण है। तथापि इतना हम मान लेते हैं कि निस्तारके लिये ज्ञान उपयोगी है। परन्तु जैसा दर्शनकार कहते हैं कि केवल आत्मानात्म विवेक रूपी ज्ञान मुक्तिके लिये लाभदायक है सो हम नहीं मानते क्योंकि केवल उतनेही ज्ञानसे कुछ लाभ नहीं हो सकता। इसका उपपादन हम पीछेसे करेंगे। परन्तु जिस ज्ञानको हम लाभदायक समझते हैं सो यह है कि ईश्वरका ज्ञान अपना श्रोर अपनी दुर्दशाका ज्ञान श्रोर उससे छूटनेके उपायका ज्ञान श्रोर मनुष्यके कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान। इस कहनेमें हमारा यह तात्पर्य्य नहीं कि इन पदार्थोंका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। क्योंकि वह तो मनुष्यको अनहोना है परन्तु यह कि जितना आवश्यक श्रोर लाभदायक है उतनाही प्राप्त करना चाहिये। ईश्वर विषयक ज्ञान ऐसा हो कि जिसके प्राप्त करनेसे मनुष्यके मनमें ईश्वरका आदर प्रेम भक्ति श्रोर भीति उत्पन्न होवें श्रोर उसके कारणसे मनुष्यका स्वभाव सुधरे श्रोर उसको धर्म पर रुचि श्रोर पाप पर घृणा उत्पन्न होवें। वैसेही मनुष्यको अपना ज्ञान इतना चाहिये कि वह अपने पदको जाने श्रोर जैसा उसे अपनेको परमेश्वरके साम्हने मान लेना चाहिये वैसा मान ले श्रोर जो उसका परमेश्वर-

के साथ संबंध है और जो मनुष्यादिकोंके साथ संबंध है उसको जाने और उन दोनों संबंधोंके समान काम करनेका अधिकार उसको मिले। और अपनी दुर्दशाको जानके उससे छूटनेकी चिंता उसको होवे और उसका योग्य उपाय जानके उसका अवलम्ब करे। परन्तु इन पदार्थोंका शुद्ध और यथार्थ वर्णन न्याय आदिक दर्शनोंमें नहीं है परन्तु उसमें बहुतसी भूल चूक मिली है॥

देखो ईश्वरके जो गुण हैं जैसे महत्त्व शक्ति ज्ञान पविचता न्याय आदिक उनका कैसा अत्यंत अयोग्य वर्णन न्याय और वैशेषिक शास्त्रमें देख पड़ता है॥

वे ईश्वरके सिवाय जीव परमाणु मन आदिक अनेक पदार्थोंको अनादि मानते हैं कि वे ईश्वरके समान आपसे आप सदा कालसे बने हैं उनको किसीने उत्पन्न नहीं किया। इस बातसे वे ईश्वरके महत्त्व और स्वतंचता और प्रभुतामें कैसी न्यूनता प्रगट करते हैं। नैयायिकोंके मतसे जीव और परमाणु अनन्त हैं कि उनकी कुछ गिनती नहीं है और यदि ये पदार्थ अनादि कालसे आपसे आप हैं तो प्रगट है कि उनका होना ईश्वरकी इच्छाके अधीन नहीं है। जैसे ईश्वरकी इच्छासे वे भये नहीं वैसेही उसकी इच्छासे वे मिट भी नहीं सकते। ईश्वर चाहता तो क्या और न चाहता तो क्या उनके होनेमें

कुछ अदल बदल न हो सकती और न हो सकेगी तो इसमें ईश्वरकी स्वतंत्रता और सर्वप्रभुता कहां रही। स्वतंत्रता और सर्वप्रभुता उसको कहते हैं कि जो कुछ होवे सो उसीकी इच्छासे अथवा अनुमतिसे होवे और ऐसा कुछ भी न होवे जो सर्वथा उसकी इच्छाके अधीन न होवे। जीव और परमाणु आदिकोंकी अस्ति यदि ईश्वरकी इच्छाके अधीन नहीं है तो उस अस्ति पर ईश्वरकी प्रभुता नहीं है। तब ईश्वर ईश्वर कैसे ठहरेगा ईश्वर तो वह है जो सबके ऊपर हो।

इस बात पर पण्डित लोगोंको कई शंका होती हैं। वे कहते हैं कि यदि हम परमाणुको अनादि न मानें तो सृष्टिकी उत्पत्तिमें क्या कारण बता सकेंगे। क्योंकि हर एक कार्यको उपादान कारण चाहिये। जैसे घटके लिये मृत्तिका। यदि मृत्तिका न हो तो कुम्हार काहेसे घटको बनावेगा। इसी प्रकारसे परमाणुको ले कर ईश्वर भी जगतको बनाता है पर बिना उनके जगत कैसे बनेगा। इसके उत्तरमें हम कहते हैं कि क्या कुम्हारकी शक्तिके समान ईश्वरकी शक्ति भी तुम समझते हो। यदि उन दोनोंकी शक्तिको समान ही ठहराओ तो यह भी कहो कि जैसे कुम्हारको घट बनानेके लिये हाथ पांव और दूसरे कितने शस्त्र आवश्यक हैं वैसेही ईश्वरको भी हैं और यदि इस

बातको मानलेते हो कि ईश्वर बिना हाथ पांव हिलाये और बिना शस्त्रोंकी सहायताके केवल इच्छासे सृष्टिको बना सकता है तो इस बातके माननेमें क्या कठिनता है कि वह उपादानके बिना सृष्टि कर सकता है वह समस्त सृष्टिको अपनी अचिन्त्य शक्तिसे उसके सब उपादान और उपादेय समेत उत्पन्न कर सकता है। यदि कहो. कि यह बात तो मनमें नहीं आसकती तो हम पूछते हैं कि क्या यह बात मनमें आसकती है कि बिना हाथ पांव हिलाये केवल इच्छा करनेसे कार्य्य उत्पन्न हो जायं। सारी सृष्टिमें ऐसा कोई भी चतुर कारीगर है जो केवल मनमें ले आनेसे अपने कार्य्यको उत्पन्न करे। पर यदि कोई कहे कि हां यह बात तो मनमें आसकती है कि बिना हाथ पांव लगाये कुछ कार्य कर सके। क्योंकि हम देखते हैं कि हमारा जो जीव है उसके स्वरूपमें हाथ पांव नहीं हैं तथापि वह केवल इच्छासे शरीरके हाथ पांवोंको उठाता है वैसेही ईश्वर भी इच्छासे पृथिव्यादिकोंको चला सकता है। तो हम कहते हैं कि यह एक दृष्टान्त तुमने कहा पर मनमें आनेकी कोई राह न दिखाई। क्योंकि यद्यपि इतना हम जानते हैं कि जीव केवल इच्छासे हाथ पांवोंको उठाता है पर तौभी यह कहां मनमें आता कि यह किस प्रकारसे होता है। इच्छा जो एक अदृश्य और अस्पर्श पदार्थ है जो रस्सीके

समान नहीं है जिससे किसी वस्तुको खींच सकें जो न लाठीके समान है जिससे वस्तुको ऊपर नीचे ढकेल सकें उससे और हस्त पादादि जड़ पदार्थोंसे कैसा संबंध होता है और वह उनको किस प्रकारसे उठाती और नीचे गिराती है यह बात किसके मनमें आ सकती है। सो यदि ईश्वरकी सृष्टिमेंकी बातें हमारे मनमें नहीं आतीं तो उसकी अचिंत्य शक्तिकी सीमा हम कैसी ठहरा सकें। फिर जीवके हाथ पांव हिलानेकी बात यहां दृष्टान्तभी नहीं हो सकती क्योंकि हाथ पांव तो जीवके शरीर हैं पर पृथिव्यादिक ईश्वरके शरीर नहीं हैं। सो जो अपना शरीर नहीं है उसमें केवल इच्छासे कार्य करनेकी बातकी कठिनता तो जैसी की तैसीही है। और पृथिव्यादिकोंको ईश्वरका शरीर तो तुम नहीं कह सकते क्योंकि शरीरके जो गुण और स्वभाव हैं उनको पृथिवी आदिकोंमें नहीं मान सकते। जैसे कि शरीरके द्वारा जीवमें अनेक विकार होते हैं पर उनको ईश्वरमें नहीं मान सकते। सो ऐसे२ अनेक शरीरके लक्षण जब कि पृथिवी आदिमें नहीं हैं तो यदि उनको ईश्वरका शरीर ऐसा नाम देओ भी तथापि हमारा शरीर उनका दृष्टान्त नहीं होगा। यदि कोई कहे कि तुमने नास्तिक मतका खण्डन करते समय जीवके अपनी इच्छासे हाथ पांव हिलानेकी बातको ईश्वरके अदृश्य

होके अपने कार्य करनेकी बातका दृष्टान्त ठहराया था सो अब क्यों कहते हो कि यह उसका दृष्टान्त नहीं हो सकता। तो हम कहते हैं कि हमने उस समय उस बातको इसलिये दृष्टान्त ठहराया था कि यदि कोई इसको सर्वथा अनहोना समझे कि कोई अदृश्य व्यक्ति दृश्य कार्यको कर सके तो उसको दिखावें कि यह बात अनहोनी नहीं है क्योंकि जीव तो प्रतिदिन ऐसा करते हैं। और इतनी बातके लिये वह दृष्टान्त अच्छा है। पर इस समय हम कहते हैं कि यह दृष्टान्त दार्ष्टान्तकी बातको मनमें ला देनेके लिये व्यर्थ है क्योंकि जैसे दार्ष्टान्त वैसे दृष्टान्त भी हमारी समझके बाहर है वरन इस कामके लिये यह पूर्ण दृष्टान्त भी नहीं है। सो हमारे कहनेका तात्पर्य यह है कि जब सब पदार्थोंकी ईश्वरके अनन्त और अचिन्त्य सामर्थ्यसे उत्पत्ति माननेमें कुछ बाध नहीं है तो वह मत जो अनन्त पदार्थोंकी स्वतंत्र सत्ता और अनादिताको मानके ईश्वरकी परम स्वतंत्रता और पूर्णप्रभुतामें न्यूनता प्रगट करता है सो दूषित है॥

जीवोंको ईश्वरने उत्पन्न किया इस बातके माननेमें और दो दोष पण्डित लोग समझते हैं एक तो यह कि ईश्वरमें वैषम्य और नैर्घृण्य प्राप्त होगा और दूसरा यह कि जीवोंको उत्पत्तिमान् माननेसे विनाश-

वान् भी मानना पड़ेगा पर इस बातका उत्तर हम आगे चलके देंगे।

फिर न्याय और वैशेषिकका जो यह मत है कि ईश्वर सृष्टि आदिक जो कुछ काम करता है सो केवल जीवोंके कर्मका फल उनको देनेको करता है और अपनी स्वतंत्र इच्छासे कुछ भी नहीं करता सो भी अयोग्य है। ईश्वरको ऐसे बन्धनमें समझनेका क्या कारण है। जानना चाहना और करना ये तो चेतन पुरुषके स्वाभाविक धर्म हैं। और यदि ईश्वर भी चेतन पुरुष है तो उसके विषयमें ऐसा समझना हमको योग्य जान पड़ता है कि वह अपनी स्वतंत्र इच्छासे जो चाहे सो कर सके। इस पर पण्डित लोग कहते हैं कि यदि हम ऐसा मानें कि ईश्वर बिना जीवोंके कर्मकी अपेक्षाके अपनीही इच्छासे सृष्टि आदिक कार्य करता है तो यह दोष आवेगा कि ईश्वरको कुछ किसी बातका अभिलाष था जिसके पूर्ण करनेके लिये उसने सृष्टिको बनाया। परन्तु जब जीवोंके कर्मोंके अनुसार सृष्टिको मानते हैं तो यह सिद्ध होता कि ईश्वरको आप किसी वस्तुका अभिलाष न था परन्तु केवल हर एकके कर्मका योग्य फल देनेके लिये सृष्टि बनाता है। इसका उत्तर हम देते हैं कि हम भी नहीं कहते कि सृष्टिके बनानेमें ईश्वरको किसी बातका अभिलाष था ऐसा कि उसको किसी

बस्तुकी न्यूनता थी जिसके प्राप्त करनेके लिये उसने सृष्टिको बनाया हो परन्तु यह कहते हैं कि यह एक उसके स्वभावकी उत्तमता है कि सृष्टि आदिके द्वारा-से अपने परम सुंदर और आश्चर्य्यमय गुणोंको प्रगट करे। क्योंकि यद्यपि तुम यह माने। कि जीवोंके शुभ अशुभ कर्मके फल देनेको ईश्वर सृष्टि आदिक काम करता है तौभी उसपर यह शंका आवेगी कि ईश्वर-को क्या काम पड़ा है जो वह जीवोंके कर्मोंका फल देवे। यदि कहो कि यह उसके न्यायी स्वभावका धर्म है कि वह हर एकके कर्मका फल उसको देवे तो हम कहते हैं कि यह भी एक उसके स्वभावकी उत्तमता है कि वह अपने परम सुन्दर गुणोंको प्रगट करे और जीवोंको उत्पन्न करके उनको अपने गुणोंसे आल्हादित करे। इस बातमें हर कोई विवेक कर-सकता है कि केवल गर्वके कारण लोगोंके मुखसे अपनी बड़ाई सुननेकी तृष्णाके वश हो कर अपनी बडाई दिखाते फिरना और बस्तु है और किसी उत्तम बस्तुकी उत्तमता प्रगट करनेको योग्य और उत्तम बात समझके उसको प्रगट करना और ही बस्तु है। जब कोई लघुस्वभाव मनुष्य गर्वसे अपनी बड़ाई दिखाते फिरता है तब उसपर सब कोई हंसता है। पर यदि कोई साहेब इंग्लिस्तानसे बड़े अद्भुत यंत्र इस देशमें ले आवे और यहांके लोगोंको अपने

घर पर बुला बुलाके उनमेंके आश्चर्य उनको संतसे दिखलावे तो कोई इसमें उसपर न हंसेगा बरन हर एक उस साहेबके बड़े उपकार मानेगा कि उसने हमको अपने घर बुला कर और परिश्रम करके ऐसी ऐसी अच्छी वस्तें संतसे दिखाईं। सो इस प्रकारसे जो वस्तु उत्तम है उसका प्रगट करना दोष नहीं बरन यह भी एक उत्तमता है। इसलिये परमेश्वर भी अपने स्वभावकी उत्तमताहीके कारणसे अपने सुंदर और आश्चर्यमय गुणोंको सृष्टि आदिके द्वारासे प्रगट करता है। बरन ऐसे रमणीय और आल्हाद-कारक गुणोंका सदा गुप्त रहनाही बड़ी अयोग्य बात ठहरती॥

अब यदि हम बिचारें कि न्याय और वैशेषिक मत-में ईश्वरके न्याय गुणका कुछ प्रकाश है अथवा नहीं तो यदि हम ऊपर ऊपरसे बिचार करें तो यह देख पड़ेगा कि जब ईश्वरको जीवोंके कर्मोंके अनुसार फल देनेहारा मानते हैं तो न्याय गुणका ठीक बखान उनके यहां है। और जब वे कहते हैं कि इस संसारमें थोड़ा थोड़ा भी जो दुःख होता है उसका कारण भी पापही समझना चाहिये और इसलिये पूर्व जन्म भी मानना चाहिये नहीं तो ईश्वरके न्यायमें बट्टा लगेगा तो इससे जान पड़ता है कि वे अपनी समझमें ईश्वरके न्याय गुणको अत्यंत पूर्णतासे मानते हैं। परन्तु यदि

हम उनकी बातोंको अच्छी तरहसे बिचारें तो देखो इस विषयमें भी उनके यहां कैसा अंधकार देख पड़ता है। हमने पहिले कहा है कि दर्शनोंमें वेद स्मृति पुराणादिकोंका प्रामाण्य माना है। तो जो कुछ वेद स्मृति पुराणादिकोंमें ईश्वरके न्याय पविचता आदि गुणोंका अशुद्ध बर्णन है उसके दोषमें शास्त्र भी भागी होते हैं। मत समझो कि इस प्रकारसे हम इधर उधरसे खींच खांचके शास्त्रों पर दोष लगाया चाहते हैं। क्योंकि ऐसाही हर बातका जब पूर्ण बिचार किया जाता है तभी उसका गुप्त रूप प्रगट होता है। क्योंकि ऐसा तो कोई भी मनुष्य नहीं जो इतना न जानता हो कि परमेश्वर न्यायी और पविच है। इसलिये मनुष्यकृत मतमें यदि ऐसी बातें लिखी हों तो क्या आश्चर्य है। तथापि मनुष्यको परमेश्वरकी पविचतादि गुणोंका शुद्ध और पूर्ण ज्ञान नहीं है और यह बात कब खुलती है जब कि वे उन गुणोंका कुछ अधिक व्याख्यान करने लगते हैं। अथवा जब वें परमेश्वर विषयक और कुछ बातें कहने लगते हैं तब भी उनकी भूल खुल जाती है। इसलिये किसी मतके ग्रंथमें परमेश्वरकी पविचतादि गुणोंके बिषयमें जो कुछ साक्षात् कहा है केवल उसीके बिचारनेसे उसकी परीक्षा नहीं हो सकती परन्तु उसका संपूर्ण बिचार करना चाहिये। और वह इस प्रकारसे

होता है कि जो जो उसमें कहा है उसको भी विचारना चाहिये और जो जो नहीं कहा उसको भी बूझना चाहिये और जिन जिन बातोंपर उसका संबंध पहुंचता उनको भी जांचना चाहिये तब उसका पूरा वृत्तांत प्रगट होगा। देखो दर्शनोंमें वेद पुराणादिकोंको प्रमाण माननेसे कैसा खुलता है कि यदि उनमें ईश्वरके न्याय और पवित्रताके बिरुद्ध कुछ नहीं कहा तो वह इस कारणसे नहीं है कि उन दर्शनकर्ताओंको ईश्वरके गुणोंके विषयमें शुद्ध और योग्य ज्ञान रहा परन्तु केवल इसलिये कि उन्होंने उस बिषयमें कुछ बिस्तारसे बर्णन नहीं किया पर यदि ऐसा करते तो उनमें भी सब प्रकारकी भूल प्रगट होती॥

फिर यदि हम यह देखें कि मनुष्यके कर्तव्याकर्तव्यके बिषयमें और मत संबंधी और बातोंमें भी दर्शनकारोंकी क्या समझ है तो इससे भी यह खुल जायगा कि उनका ईश्वरकी पवित्रतादि गुणोंका ज्ञान कैसा है। क्योंकि इन बातोंमें और ईश्वरके गुणोंमें ऐसा दृढ़ संबन्ध है कि यदि उनमेंसे एकमें दोष पाया जावे तो दूसरे पर भी ठहरता है। और इन बातोंके विषयमें वेद पुराणादिकोंमें बहुत अयोग्य बर्णन है इसलिये उनके दोषोंमें दर्शन भी भागी होते हैं॥

हम पीछेसे दिखावेंगे कि धर्म और अधर्मके विषयमें जो दर्शनोंका मत है सो अत्यन्त अयोग्य है उससे

यह सिद्ध होगा कि परमेश्वरकी पवित्रतादि विषयक दर्शनोंका मत शुद्ध नहीं है॥

अब न्याय और वैशेषिकके सिद्धांतके अनुसार दयाका गुण तो कदापि ईश्वरमें नहीं हो सकता। क्योंकि उनका तो यह नियम है कि जीवोंके कर्मके बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। इसलिये जो कुछ जीव पाते हैं उसको उनके किये हुये कर्महीका फल समझना चाहिये और यदि उन्होंने मोक्षको भी पाया तो उसको भी अपनेही कामसे कमाया। और यह बात तो स्पष्ट है कि दया तभी कहलावेगी जब ईश्वर जीवोंको बिना उनकी करनीके कुछ दे पर यह बात न्याय वैशेषिक और दूसरे दर्शनोंके भी सिद्धांतके बिरुद्ध है॥

फिर न्याय और वैशेषिक जो यह बात नहीं मानते कि ईश्वरने अपनी स्वतन्त्र इच्छासे सृष्टिको बनाया है परंतु कहते हैं कि सारी सृष्टि जीवोंके सत् असत् कर्मोंका फल देनेके लिये बनी है इससे वे परमेश्वरकी उस दयाको सर्वथा उठा देते हैं जो कि सृष्टिकी रचनामें प्रगट होती है। जब हम परमेश्वरकी इस सृष्टि पर दृष्टि करते हैं तो हमको चारों ओर उसकी अद्भुत दया और उदारताके लक्षण देख पड़ते हैं। पहिले तो हमको जो अपनी उत्पत्तिके पहिले कुछ नहीं थे ईश्वरने एक अस्ति और जीवन

और ज्ञान आदि दे कर कैसे सुख भोगनेके योग्य बनाया। यद्यपि अब हमको अनेक दुःख भोगना पड़ता है तथापि ये सब दुखदायी पदार्थ और मृत्यु भी हमारे पापोंका फल हैं और इसमें तो हमारा ही अपराध है। परंतु यदि हमने पाप न किया होता तो जो जो सुख हमको प्राप्त होता विशेष करके हमारी बुद्धिके शुद्ध होनेसे और स्वभावके पवित्र होनेसे जो जो सुख हमको ईश्वरकी पहिचान और भक्ति प्रेम और समागममें प्राप्त होता उसका कुछ बर्णन नहीं हो सकता। जब हम सूर्यकी ओर दृष्टि करते हैं जो देखनेमें ऐसा आल्हादकारक और अनेक लाभ-दायक है उसी प्रकारसे रात्रिको चंद्र औ तारागणको अवलोकन करते तो ऐसा जान पड़ता कि हमारे दयाल जन्मदाताकी दया मूर्तिमंत होके हमसे मानों संभाषण करती है। ये अति सुख बिश्रांतिदायक और मिष्ट फलके संपादक वृक्ष और रमणीय पर्बत और नदी आदिक जो पृथिवीको सुशोभित करते हैं ये सब मिलके मानों हमको पुकारते हैं कि अपने दयाल पिताके प्रेम और उदारताकी स्तुति करो। इसी प्रकारसे और भी अनेक सुखकारक पदार्थ जो ईश्वरने बनाये उनका बर्णन कौन कर सकेगा। परन्तु इन सब बातोंमें परमेश्वरकी दया तब सिद्ध होगी जब हम यह मानें कि ईश्वरने अपनी स्वतन्त्र इच्छा

और स्वाभाविक उदारतासे इस सृष्टिको बनाया है। पर नैयायिक और वैशेषिकोंने यह नियम ठहराके कि सब कुछ जीवोंके कर्मोंसे बना है इस सारी शोभा पर एक उदासीकी कारिख फेर दी है। और परमेश्वरको एक निठुर स्वभावका व्योपारी बनाया है जो कि गांहकोंसे दाम ले लेके उनको तौल तौलके सौदा बेंच रहा.है। यह तो न्याय और वैशेषिक मतका ईश्वर विषयक बर्णन है ॥

---

२ दूसरा अध्याय ।

जिसमें न्याय और वैशेषिक मतमें जीवका जो बर्णन है अर्थात् उसके अनादि और सर्वव्यापक होने और बार बार जन्म लेनेका जो मत है उसकी परीक्षा है ।

अब जीवके बर्णनमें भी न्याय और वैशेषिक मतमें बहुत भूल चूक है। वे जीवोंको अनादि और सर्वव्यापक मानते हैं। पर हम आगे दिखा चुके कि ईश्वरको छोड़ किसी दूसरे पदार्थको अनादि माननेसे ईश्वरके ईश्वरत्व पर दोष आता है। पर नैयायिक और वैशेषिक जिन कारणोंसे जीवोंको अनादि और सर्वव्यापक मानते हैं उनका अब हम बिचार करते हैं। वे कहते हैं कि यदि हम जीवोंको अनादि और सर्वव्यापक न मानें तो वे बिनाशवान् ठहरेंगे। पहिले

अनादित्वके विषयमें वे यह कहते हैं। जो जो पदार्थ आदिमान है सो सो बिनाशवान् है जैसे घट पट आदिक। इसलिये यदि जीव भी आदिमान होगा तो बिनाशवान् ठहरेगा। पर हम यह पूछते हैं कि यह जो तुम्हारा नियम है कि जो आदिमान है सो नाशवान है इसका क्या मूल है। यदि कहो कि हम घट पटादि पदार्थोंको ऐसा देखते हैं यही उसका मूल है तो घट पटादि भौतिक पदार्थोंमें और आत्माके स्वरूपमें इतनी बड़ी बिलक्षणता है कि एककी बात दूसरेको नहीं लगा सकते हैं। फिर यह जानो कि हर एक पदार्थकी उत्पत्ति स्थिति और बिनाश केवल ईश्वर इच्छाके अधीन है। क्या यदि वह चाहे तो एक घटको भी अपनी अनन्त शक्तिसे सदा काल लों सुरक्षित न रख सकेगा। और जब दूसरे प्रमाणोंसे जिनका बर्णन हम यहां नहीं करते यह सिद्ध है कि जीव अबिनाशी है तो इससे यह भी प्रगट है कि ईश्वरकी यही इच्छा है कि जीव सदा बना रहे तो जैसा उसने चाहा वैसा करनेको उसको कुछ अशक्य है। क्या तुम्हारा यह नियम उसकी अनन्त शक्तिको भी प्रतिहत कर सकता है। यही तो एक तुम्हारी बड़ी भूल है कि तुम अपने मनसे एक नियम ठहराते हो और तब उसके बंधनसे सारे जगत्को बरन ईश्वरको भी बांधने चाहते हो चाहे वह इस योग्य हो चाहे न हो॥

पण्डित लोग जो यह नियम मानते हैं कि जो जो उत्पत्तिमान है सो नाशवान है इसका कारण यदि कदाचित् कोई अपने मनमें यह समझे कि जो जो उत्पत्तिमान द्रव्य है सो अवश्य करके सावयव है अर्थात् अंशोंके मिलनेसे बना है ग्रैार जो पदार्थ अवयवोंसे बना है उसके अवयवोंके अलग अलग होनेका भी डर है इसलिये उसका कभी न कभी नाश होगा। तो हम कहते हैं यह नियम पण्डितोंको मानना अवश्य है परन्तु हमको नहीं। क्योंकि पण्डित लोग कहते हैं कि हर एक कार्य उपादान कारण बिना नहीं बनता ग्रैार जो द्रव्य उपादान कारणसे बनेगा सो तो अवश्य करके सावयव होगा। परन्तु हम कहते हैं कि परमेश्वर अपनी अचिन्त्य शक्तिसे बिना उपादानके भी कार्य बना सकता है तो ऐसे कार्यका सावयव होना कुछ अवश्य नहीं है॥

अब पण्डित लोग जो जीवको सर्वव्यापक मानते हैं उसका भी यही कारण है कि जिसतें जीव बिनाशी न होवे। वे तीन प्रकारके परिमाण मानते हैं एक अणु परिमाण दूसरा मध्यम परिमाण तीसरा परम महत् परिमाण। अणु परिमाण तो सबसे छोटा है जैसा परमाणुका ग्रैार मध्यम परिमाण घट पट आदिक सब कार्य द्रव्योंका है। यह परिमाण ऐसा है कि यद्यपि वह कितना भी बड़ा हो तथापि उसके

महत्त्वकी कहीं न कहीं सीमा रहती है। तीसरा परम महत् परिमाण है जो असीम है। और यह परिमाण वे ईश्वरमें आकाशमें और जीव आदिक पदार्थोंमें ठहराते हैं। सो जिस पदार्थमें यह परिमाण है वह सर्वव्यापक है। अब वे कहते हैं कि अणु परिमाणवाले और परममहत्परिमाणवाले पदार्थ तो अबिनाशी हैं पर जो जो पदार्थ मध्यम परिमाणवाले हैं सो अबिनाशी नहीं हो सकते। सो जीवको अबिनाशी ठहरानेके लिये अणु परिमाण अथवा परम महत् परिमाण ठहराना अवश्य है। पर यदि अणु परिमाण कहें तो उसके जो ज्ञान इच्छादिक गुण हैं उनका प्रत्यक्ष ज्ञान न होगा क्योंकि यह भी नियम है कि परमाणुके गुण प्रत्यक्षसे नहीं जाने जाते जैसे पृथिव्यादिकोंके परमाणुओंके रूप रसादि गुण प्रत्यक्षसे नहीं जाने जाते। पर यह तो सभोंका अनुभव है कि जीवके गुणोंका प्रत्यक्ष अनुभव होता है इसलिये उसको परम महत् परिमाण ठहराना अवश्य है। पर हम कहते हैं कि यह भी जो उनका नियम है कि जो जो मध्यम परिमाणवाले हैं सो सो बिनाशी हैं सोभी उनके पहिले नियमके समान निर्मूल है। यदि कदाचित् उनको यह डर हो कि यदि जीवको मध्यम परिमाणवाला मानें तो सावयव भी ठहरेगा और इसलिये बिनाशवान होगा तो इसका उत्तर हम दे चुके कि

यह शंका उन्हीं पर आती है जो हर एक कार्य द्रव्यकी उपादान कारणसे उत्पत्ति मानते हैं पर हम पर यह शंका नहीं आती और इसलिये हम यद्यपि जीवको मध्यम परिमाणवाला मानें तथापि सावयव मानना हमको आवश्यक नहीं है। यदि कोई कहे कि मध्यम परिमाणवाले पदार्थको निरवयव मानना बड़ा कठिन मालूम होता है तो हम कहते हैं कि यदि परमाणुओंको और परम महत् परिमाणवालों-को निरवयव मानना तुमको कठिन नहीं मालूम होता तो मध्यम परिमाणवालेको वैसा मानना क्यों कठिन लगता है॥

फिर और एक शंका इस विषयमें पण्डित लोगोंको जो होती है सो यह है कि यदि हम जीवको सर्व-व्यापक न मानें परन्तु शरीरसे परिछिन्न मानें तो यह भी मानना पड़ेगा कि शरीरके परिमाणके बदलनेसे उसका भी परिमाण बदलता है। क्योंकि पण्डितोंके मतके अनुसार वही जीव एक जन्ममें चिउंटीके शरीर-में रहता है और दूसरे जन्ममें मनुष्यके और फिर एक जन्ममें हाथीके शरीरमें भी जा सकता है। इस-लिये वे कहते हैं कि यदि हम आत्माके स्वरूपको शरीरसे परिछिन्न मानें तो जब जीव चिउंटीके शरीरमें है तब उसको अत्यंत छोटा मानना पड़ेगा। पर जब वही जीव मनुष्य और हाथीके शरीरमें रहेगा

तो वह क्योंकर उस शरीरमें व्यवहार कर सकेगा। उस शरीरमें सिरसे लेके पांव तक स्पर्शका बोध उसको क्योंकर हो सकेगा क्योंकि वह तो ऐसे बड़े शरीरमें सिरसे लेके पांव तक व्यापके नहीं रह सकता। इसलिये यह मानना पड़ेगा कि शरीरके साथ आत्मा भी बढ़ता घटता है। और जब इस प्रकारसे उसमें बार बार घटने बढ़नेके कारणसे बदलना ठहरा तो बार बार उसमें उत्पत्ति और बिनाश भी ठहरेगा। क्योंकि बदलना क्या है यही कि पहिलेका नाश होना और दूसरेका उत्पन्न होना। इस पर हम कहते हैं कि इस प्रकारसे एक ही जीवका चिउंटी और मनुष्य और हाथी इत्यादिके शरीरमें जाना हम तो मानते ही नहीं इसलिये इस विषयमें पंडितोंको उत्तर देना हमको आवश्यक नहीं है। तथापि इसका उत्तर देते हैं क्योंकि ऐसीही शंका उनको और बातमें भी होवेगी। जैसा कि मनुष्यका शरीर बाल्यावस्थामें छोटा रहता है और पीछेसे बहुत बड़ा हो जाता है इसलिये वे कहेंगे कि यदि मनुष्यके जीवको शरीरसे परिछिन्न मानें तो यह मानना होगा कि बाल्यावस्थाका छोटासा आत्मा बड़ी अवस्थामें बढ़ जाता है नहीं तो छोटे शरीरके छोटे आत्माको बड़े शरीरमें सिरसे लेके पांवतक स्पर्शका बोध क्योंकर हो सकेगा। इसलिये हम इसका उत्तर देते हैं कि यद्यपि आत्माको शरीरसे

परिछिन्न समझें तथापि शरीरके परिमाणके बदलने-से उसके परिमाणका बदलना आवश्यक नहीं है। बाल्यावस्थासे मनुष्य जब बढ़ने लगता है तब उसके आत्माकी ज्ञान आदिक शक्ति तो बढ़ती है परंतु यह कहना आवश्यक नहीं कि उसका परिमाण भी बढ़ता है। और जब हम कहते हैं कि आत्मा शरीर-से परिछिन्न है तो यह हमारा तात्पर्य नहीं है कि उसका परिमाण ठीक शरीरके परिमाणके बराबर है। परंतु हमारा केवल यह तात्पर्य है कि उसकी स्थिति शरीरके बाहर नहीं है। क्योंकि हम यह समझते हैं कि आत्माका स्वरूप अति दुर्ज्ञेय है इस-लिये उसके विषयमें कोई पूर्ण बर्णन नहीं कर सकता। और उसी आत्माको छोटे और बड़े शरीरमें सिरसे ले पांव लों समस्त अंगोंमें स्पर्शका भान होना कुछ कठिन नहीं है। क्योंकि आत्मा इन्द्रियोंके द्वारासे रूप रस स्पर्श आदि विषयोंका ग्रहण करता है। और उन इन्द्रियोंकी वृद्धि और क्षीणतासे उसके ज्ञानमें भी वृद्धि और क्षीणता होती है। जैसे वही मनुष्य नेत्रेन्द्रियके क्षीण होनेसे कम देखता है और फिर उसके सुधर जानेसे अधिक देखने लगता है। वैसेही स्पर्शका ज्ञान त्वगिन्द्रियसे होता है. और शरीरके साथ त्वगिन्द्रिय भी बढ़ता है और उसीसे बड़े शरीरमें भी सब अंगोंमें स्पर्शका बोध हो सकता है॥

पर तत्त्व बात यह है कि आत्माका स्वरूप ऐसा दुर्ज्ञेय है कि मनुष्यकी बुद्धि और वाणीका विषय नहीं हो सकता। हम केवल जीवके विषयमें इतना जानते हैं कि जीव कोई ऐसा पदार्थ है जिसमें जानना इच्छा करना इत्यादि धर्म रहते हैं पर इससे अधिक उसके विषयमें कुछ नहीं कह सकते और पृथिवी जल आदिक जड़ पदार्थोंमें जैसे परिमाण और लम्बाई चौड़ाई आदिक गुण हैं उनको उसी प्रकारसे आत्मामें नहीं लगा सकते। इसलिये जो जो बातें तुम घट पटादि भौतिक पदार्थोंके विषयमें समझते हो उनको जीवके स्वरूप पर मत लगाओ। परंतु पण्डित लोगोंका ऐसा स्वभाव है कि वे यह बिचार नहीं करने चाहते कि कौन बात हमारी बुद्धिकी पहुंचके भीतर है और कौन बाहर है पर चाहते हैं कि दृश्य अदृश्य जीव ईश्वर आदि सब पदार्थोंको नाप जोंख लें उनको चारों ओरसे उलट पुलटके उनके भीतर पैठके उनके समस्त तत्त्वको अपनी मुट्ठीमें लाकर रक्खें। उनकी समझ है कि जानना तो सबही जानना नहीं तो कुछ भी नहीं। और इसीलिये मिथ्या बिचारके बनमें भटक जाते हैं। पर हम उनसे कहते हैं कि जीवका स्वरूप जैसा हो तैसा हो तथापि उसकी उत्पत्ति स्थिति और नाश ईश्वरेच्छाके अधीन हैं और इसलिये यदि ईश्वरकी इच्छा हो कि जीव सदा

बना रहे तो उसका बिनाश किसी प्रकारसे नहीं हो सकता॥

परन्तु जीवोंके अनादि माननेमें पण्डित लोगोंकी दृष्टिमें जो बड़ा भारी कारण है सो यह है। वे कहते हैं कि यदि जीवोंको अनादि न मानेंगे परन्तु यह कहेंगे कि वे इसी शरीरके साथ नये उत्पन्न हैं तो इसमें परमेश्वर पर वैषम्यनैर्घृण्यरूप दोष आवेंगे। वैषम्य उसको कहते हैं कि सभों पर समान दृष्टि न करना परन्तु किसी पर अधिक अनुग्रह करना और किसी पर कम किसीको बड़ा पद और बड़ा ऐश्वर्य्य देना और किसीको उससे निकृष्ट। नैर्घृण्यका अर्थ है निर्दयता कि किसीको बिना अपराध दुःख देना जो अन्याय ठहरता है। अब हम इस जगतमें देखते हैं कि कितने बड़ा पद और बड़ा ऐश्वर्य्य भोगते हैं और कितने दीन और निर्धन देख पड़ते हैं तो इसका क्या कारण है जो ईश्वरने एकको ऐसा और दूसरेको वैसा बनाया है। फिर प्रायः सब मनुष्य दुःख और विपत्ति पाते हैं उसका भी क्या कारण है। यदि कहो कि इन बातोंका कारण उनका पाप है जो उन्होंने इसी जन्ममें किया है। तो यह बात नहीं लग सकती। क्योंकि हम देखते हैं कि बहुतेरे जो बड़े पापी हैं सो बड़ा ऐश्वर्य्य और सुख पाते हैं और बहुतेरे जिनका आचार उनसे कहीं भला है सो दैन्य और

दुःखकी ज्वालामें छटपटाते हैं। फिर बालकों और पशुओंके विषयमें क्या कहोगे जो जान बूझके कोई भी पाप नहीं करते तथापि बहुतसी पीड़ा पाते हैं। इसलिये हम पूर्व जन्मको मानते हैं जिससे ये सारे दोष दूर हो जाते हैं। क्योंकि तब हम कह सकते हैं कि जो मनुष्य इस जन्ममें बड़ा ऐश्वर्य्य और सुख पाता है उसके कर्म यद्यपि अति दुष्ट हों तथापि उसने पूर्व जन्ममें अधिक पुण्य किया था जिसका वह फल भोग रहा है। और इसी प्रकारसे दूसरा मनुष्य जो इस जन्ममें अधिक दुःखी है तथापि जिसके कर्म औरोंसे अच्छे हैं उसने भी पूर्व जन्ममें बड़ी दुष्टता की थी जिसका अब वह दंड भोगता है और वैसाही बालक और पशु भी पूर्व जन्मके किये हुये पापोंका फल भोगते हैं। फिर एकही पूर्व जन्मके माननेसे भी काम नहीं चलता क्योंकि उस जन्ममें भी जो सुख दुःख पाते हैं उनके लिये भी उससे पहिले जन्मके कर्मोंको ठहराना चाहिये। फिर शरीरको धारण करना भी कर्मका फल है इसलिये जब जब जीव शरीरको प्राप्त करता है तब तब उसके लिये उससे पहिले कर्मको ठहराना अवश्य है। इसलिये हम अनादि कालसे कर्म और जन्म लेनेकी धाराको मानते हैं। कि कर्मसे जन्म और जन्मसे कर्म अनादि कालसे होते आये हैं॥

इसके उत्तरमें हम कहते हैं कि इस युक्तिसे भी जीवका अनादि होना नहीं सिद्ध हो सकता। क्योंकि यदि हम तुम्हारी इतनी बात मान भी लें कि इस संसारमें जो कभी कभी साधुओंको अधिक दुःख और दुष्टोंको अधिक सुख होता है और बालक और पशु जिन्होंने जान बूझके पाप नहीं किया है वे भी दुःख भोगते हैं इसलिये पूर्व जन्मको मानना चाहिये तथापि जीवोंके अनादि माननेकी और जन्म मरणकी अनादि धारा माननेकी क्या आवश्यकता है। क्योंकि यदि हम इतना मानें कि आदि समयमें जब जीवोंको ईश्वरने उत्पन्न किया तब वे सुखी थे परन्तु जब उन्होंने पाप किया तब उसका फल भोगनेके लिये अनेक जन्म लेना पड़ा तो इतनेसे भी तुम्हारी सब शंका दूर हो सकती हैं। परन्तु तुम जो कहते हो कि जब जब जीव शरीरको धारण करता है तब तब उससे पहिले कर्मको भी ठहराना चाहिये क्योंकि शरीर धारण करना भी कर्मका फल है सो तुम्हारा कहना तो अत्यंत निर्युक्तिक है। क्योंकि हम आगेही दिखा चुके कि तुम्हारा जो यह नियम है कि हर एक कार्यके लिये जीवकर्मको कारण मानना चाहिये सो तो अत्यंत अयोग्य है परन्तु ईश्वर अपनी स्वतंत्र इच्छासे कार्य उत्पन्न करता है। परंतु पण्डित लोग कहते हैं कि शरीर तो दुःखायतन अर्थात् दुःखका

बसेरा है इसलिये वह भी दुःख रूपी है। इसीलिये नैयायिक एकईस प्रकारके दुःखोंमें शरीरकी भी गणना करते हैं। तो यदि ईश्वर जीवोंके कर्मके बिना उनको शरीरी करे तो इसमें भी अन्याय ठहरेगा। इसके उत्तरमें हम कहते हैं कि शरीर स्वभावतः दुःखायतन नहीं है। बरन शरीरके द्वारा बहुत कुछ सुख प्राप्त होता है। परन्तु रोगादिकके होनेसे जो शरीरसे दुःख होता है उससे बचानेका ईश्वरमें सामर्थ्य है। यदि वह चाहे तो हमको शरीरी रखके भी सुखी रख सकता है। देखो यहां भी कैसी पण्डितोंकी बिचारकी कचाई प्रगट होती है। न्याय और वैशेषिक मतके अनुसार पण्डित लोग ईश्वरकी अस्तिको मानते हैं। तथापि जब वे और बातोंका बिचार करने लगते हैं तब ऐसा जान पड़ता है कि मानों वे ईश्वरको भूल गये और मानों सब बातोंकी व्यवस्थाको आकस्मिक समझते हैं। क्योंकि वे जो ऐसा सिद्धांत ठहराते हैं कि शरीरके साथ दुःख अवश्य है इसका कारण यही है कि वे सर्वत्र ऐसाही देखते हैं और इसलिये समझते हैं कि इसका ऐसाही स्वभाव है और मानों ईश्वर भी उसको और प्रकारका नहीं कर सकता। ऐसीही उनकी भूल उस नियममें भी है जो वे कहते हैं कि जो जो उत्पत्तिमान है सो अबिनाशी नहीं हो सकता। पर देखो ऐसी बातोंका

मानना तब योग्य ठहरेगा जब कि हम इस संसारके प्रवाहको आकस्मिक और किसी स्वाभाविक नियमके अधीन मानें। परंतु यदि ईश्वर इसका नियामक है तो सारी बातें उसीकी इच्छासे होती हैं। कितने पदार्थ बिनाशी हैं क्योंकि उसकी ऐसीही इच्छा है कि वे बिनाशी होवें। फिर कितने अविनाशी हैं क्योंकि उनके विषयमें उसने वैसीही इच्छा की। इसी रीतिसे हम मनुष्य दुःख भोगते हैं क्योंकि उसके अगाध और दुर्ज्ञेय बिचारमें ऐसाही उचित ठहरा है। और यदि उसकी इच्छा हो तो शरीरमें राखके भी हमको सुखी रखना उसको कुछ कठिन नहीं है। और परमेश्वरके सत्य शास्त्रसे प्रगट होता है कि जब मनुष्य निष्पापताकी दशामें था तब उसके लिये कोई दुःख न था। न रोग न शोक न मृत्यु उसको था। बरन् उसका शरीर उसके लिये अनेक सुखोंका द्वार था। परंतु जबसे वह पापी हुआ तबसे अनेक मानस और शारीरिक दुःखोंके अधीन हुआ। और पृथिवी जल वायु आदिक सब बाह्य पदार्थ जो पहिले उसके लिये केवल सुखके संपादक थे सो पीछेसे अनेक दुःखोंके उत्पादक बन गये। इसलिये पण्डितोंका यह सिद्धांत सर्वथा अयोग्य है कि शरीरमें रहनाही दुःख रूप है॥

अब जीवोंके कर्म और जन्मकी अनादि धाराकी

बातके खंडनमें जो अभी हमने कहा सो केवल तुम्हारीही समझके अनुसार कहा। क्योंकि हम तो जीवका बार बार जन्म लेनाही नहीं मानते। और जो तुम इसके सिद्ध करनेके लिये युक्ति लाते हो सो हमारी समझमें दुर्बल है। जीवके बार बार जन्म न माननेमें तुम्हारी समझमें पहिला दोष वैषम्य है। इसमें यदि तुम्हारा केवल यह तात्पर्य है कि परमेश्वरने सभोंको समान पद और समान सुख नहीं दिया है तो यह शंका हमारी समझमें कुछ भी नहीं। क्योंकि हम तो यह मानते हैं कि परमेश्वरने अपने उत्तम गुणोंको प्रगट करनेके लिये सृष्टिको बनाया और वह सब जीवोंको बिना उनके कर्मके नये नये बनाता है। और अपनी सृष्टिकी बिचित्रता दिखानेके लिये उनको भी बिचित्र प्रकारसे बनाता है। जैसे एक प्रकारके जीव वे हैं जिनको हम स्वर्गीय दूत कहते हैं जिनका पद ऐश्वर्य ज्ञान पराक्रम आदिक मनुष्योंसे कहीं अधिक हैं। वे अशरीरी और दिव्यरूप हैं। उनसे छोटे मनुष्य हैं। फिर उनसे भी अत्यंत छोटे निर्विवेक जीव हैं जैसे पशु। फिर इतनोंको तो हम जानते हैं परंतु परमेश्वरकी बिशाल सृष्टिमें कौन कह सकता कि और भी भिन्न भिन्न पदके कितने जीव होंगे। फिर स्वर्गीय दूतोंमें भी भिन्न भिन्न पदवी हैं। वैसे मनुष्योंमें भी भिन्न भिन्न पदवी हैं। तो जब कि

ईश्वरने इनको अपनी स्वतंत्र इच्छासे बनाया है तो उनमेंसे किसीको यदि बड़ा पद दे और किसीको छोटा तो क्या इसमें किसीका दावा है। जो हम पहिले कुछ थे ही नहीं और हमको उत्पन्न करके उसने कुछ भी दिया है तो इसमें उसकी केवल दयाही है। तो क्या यह दया केवल इस बातसे अन्याय हो जायगी कि उसने दूसरेको हमसे अधिक दिया। यदि कोई किसी दरिद्रको दस रूपये देवे तो वह उसके बड़े उपकार मानेगा। पर यदि दूसरे दरिद्रको सौ रूपये देवे तो क्या पहिलेका उपकार अनुपकार हो जायगा बरन अन्याय ठहरेगा। हम जानते हैं कि पापके कारणसे मनुष्योंका स्वभाव जो भ्रष्ट हो गया है उस करके जब कि वे देखते हैं कि औरोंको हमसे अधिक मिलता है तो प्रायः बुरा मानते हैं और डाह करते और दुःखी भी होते हैं। पर यह उनका दुःख उनके भ्रष्ट स्वभावके कारणसे है पर उसका कोई योग्य कारण नहीं है। इसलिये किसीको न्यून और किसीको अधिक देनेमें कुछ अन्याय नहीं। यह तो है कि जब सभोंका दावा बराबर पाने पर हो तब अन्याय होगा परंतु परमेश्वर पर किसीका दावा नहीं है॥

पर अब यदि तुम कहो कि भला यद्यपि हम इस बातको मान लें कि किसीको छोटा पद और किसीको

महत पद देनेमें और किसीको थोड़ा ऐश्वर्य और किसीको बड़ा ऐश्वर्य देनेमें कुछ अन्याय नहीं है तथापि किसीको अकारण दुःख देना तो अन्याय ठहरेगा। और यहां कितने बड़े पापियोंको बड़ा सुख मिलता है और कितने जो सज्जन हैं सो दुःखकी लवरमें तड़पते हैं और बालक और पशु भी अनेक दुःख पाते हैं जिन्होंने कुछ पाप नहीं किया है। सो इन सब बातोंका क्या कारण ठहराते हो। तो इसका उत्तर सुनो। इसमें कुछ संदेह नहीं कि पापका फल दुःख है। और इसलिये कि सब मनुष्य पापी हैं यह उचित है कि वे पापके कारणसे अनेक दुःख पावें। और यद्यपि मनुष्योंमें कितने लोग भले और सज्जन कहलाते हैं तथापि वे भी ईश्वरके साम्हने अपराधी हैं। क्योंकि मनुष्यकी दृष्टि और ईश्वरकी दृष्टिमें बड़ा भेद है। मनुष्यकी दृष्टि तो पापके कारणसे मलिन हो गई है इसलिये उनकी दृष्टिमें पापकी बुराई ठीक ठीक प्रगट नहीं होती। मनुष्योंमें जो कितने लोग साधु और सज्जन कहलाते हैं इसका कारण केवल यही है कि वे और बहुतोंसे अच्छे हैं। परन्तु ऐसा एक भी मनुष्य इस जगतमें नहीं है कि जिसका मन और स्वभाव पापके कलंकसे कलंकित न हुआ हो। इसलिये वे भी जो मनुष्योंमें सज्जन कहलाते हैं उस महा पवित्र परमेश्वरके साम्हने अपराधी और

दंडके योग्य हैं। परंतु यदि तुम पूछो कि भला यद्यपि ऐसे सज्जन पुरुष भी दंडके योग्य हों तथापि जो लोग उनसे अधिक दुष्ट हैं वे क्यों सुखी होते हैं और ये क्यों उनसे अधिक दुःख पाते हैं। तो इसका उत्तर सुनो इस जगतमें मनुष्योंका न्याय होनेका स्थान नहीं है। परंतु उनका पूर्ण न्याय मरणोत्तर होगा। और तभी हर एक अपनी अपनी करनीका ठीक ठीक और पूरा बदला पावेगा। परंतु यह जगत् तो एक पाठशालाके सदृश मनुष्योंके लिये शिक्षा प्राप्त करनेका स्थान है। इसलिये यहां जो सुख अथवा दुःख होते हैं सो कुछ हर एककी करनीका बदलारूप नहीं हैं। परंतु बहुधा ऐसा होता है कि परमेश्वर हर एक मनुष्यके हितके लिये जैसा योग्य समझता है वैसाही उसको सुख अथवा दुःख देता है। परन्तु किसको कौन बात हित अथवा अहित है इसका निर्णय करनेकी हम तुमको योग्यता नहीं है। क्योंकि हम तुम हर एकके मन और स्वभावको और उसके भूत भविष्य वर्तमानकी दशाको और जो उसको सुख अथवा दुःख हो उसके भावि परिणामको नहीं जान सकते। इसलिये यदि हम यह कहें कि इस संसारमें जो जो दुःख होते हैं वे सब अनिष्टरूपही हैं तो इसमें हमारी बड़ी भूल होगी। क्योंकि सच पूंछो तो परमेश्वर दया करके हम पर इस संसारमें दुःख

भेजता है जिससे हम दुःखका स्वाद पा कर चेत जावें और पश्चात्ताप करके ईश्वरकी ओर फिरें और अपनेको उस भावि दंडसे बचावें। तो देखो यहांके दुःखोंको देख कर परमेश्वरके न्याय पर शंका करना कैसे अबिचारकी बात है। जब कोई मनुष्य बिचारान्ध होके कुकर्मकी राह पर चला जाता है और किसी महा दुःखके कारणसे उसके हृदयकी दृष्टि खुल जाये और वह चेत जाये और पश्चात्ताप करके ईश्वरकी ओर फिरे तो वह मनुष्य उस दुःखके देनेमें परमेश्वरका महा प्रसाद समझेगा कि नहीं और जन्म भर ईश्वरकी स्तुति करेगा कि नहीं॥

और यह मत समझो कि जो साधु और सुस्वभाव हैं उनको इस दुःख रूपी औषधकी आवश्यकता नहीं है। उनमें भी बहुतसी भूल चूक और कसर रहती है। और बहुधा ऐसा होता है कि जो ईश्वरके प्रिय दास हैं उनको निज करके ईश्वर बिपत्तिकी दशा दिखलाता है कि वे सुबर्णके समान दुःखकी भट्ठीमें ताये जाके अधिक निर्मल हो जावें। तो देखो केवल दुःखका नाम सुनके उसको सर्वथा बुरा समझना और अपनी क्षुद्र बुद्धिसे उसके गुप्त कारणोंके विषयमें निर्णय करने लगना कैसी अज्ञानताकी बात है॥

बहुतेरे लोग पूछते हैं कि यदि पूर्व जन्म नहीं है तो कितने जन्मतेही अन्धे लंगड़े क्यों उत्पन्न होते हैं।

और ईश्वर कितनोंको तो ऐसे और कितनोंको भले चंगे उत्पन्न करता है क्या इसमें ईश्वरमें अन्याय न ठहरेगा। पर हम उनसे यही कहेंगे कि भाई समझ बूझके बोलो। क्या तुम ऐसे क्षुद्र कीट पतंगके सदृश हो कर ईश्वरके अगाध गंभीर अभिप्रायका थाह लेने चाहते हो। क्या तुम हर एक मनुष्यके मन और स्वभाव और समस्त बाह्याभ्यन्तर दशाको जान सकते हो। कौन कह सकता है कि उन्ही लंगड़े और अंधों-के अबिनाशी आत्माको उनके चार दिनोंके कष्टके कारणसे क्या क्या कुछ हित होगा। यह तो है कि यद्यपि परमेश्वर अपनी बड़ी दयासे हमारे अबिनाशी आत्माके अनन्त कल्याणके लिये अनेकबिध दुःख रूपी औषध हमको देता है तथापि मनुष्य अपने पापमें ऐसे प्रमत्त हो रहे हैं कि बहुतेरे उनमेंसे उन दुःखोंके कारणसे भी चेत नहीं जाते और अपने पापोंसे पश्चात्ताप करके ईश्वरकी ओर नहीं फिरते। पर यह उनका ही दोष है ईश्वरकी तो उस बातमें दयाही ठहरती है। क्या तुम्हारे यहां भी ऐसी बात नहीं लिखी है कि (यस्यानुग्रहमिच्छामि तस्य वित्तं हराम्यहम।) अर्थात् जिस पर मैं अनुग्रह करने चाहता हूं उसके धनको हर लेता हूं॥

अब बालकों और पशुओंके दुःखकी बात रह गई। पर इसमें हम तुमको पूछते हैं कि क्या यह बात

निश्चित है कि जब कोई जीव दुःख पाता है तो केवल उसीके किये हुये अपराधके सिवाय और कोई उसके दुःख पानेका योग्य कारण नहीं हो सकता। जब कोई मनुष्य बड़ा राजद्रोह करे तो राजा उस मनुष्यको घात करता है और उसके गांव जागीर और धन दौलतको छीन लेता है। तब उसके लड़के परिवारको बड़ा दुःख होता है यद्यपि वे लोग उस राजद्रोहके कर्ममें कुछ भी भागी न हुये हों। तो क्या उस राजाको कोई अन्यायी कहेगा। फिर यदि किसी राजाकी प्रजा अति उत्तम और सब बातोंमें आज्ञापालक हो और राजाभी उससे अति प्रसन्न हो। तथापि जब कोई बैरी राजासे युद्ध करनेको आवे तो राजा अपनी प्रिय प्रजाको आज्ञा करता है कि तुम सबको इस युद्धमें मेरी सहायता करना होगा। और इस बातमें हजारों मारे जाते और बहुत दुःख पाते हैं यद्यपि उन्होंने अपने स्वामीका कुछ अपराध नहीं किया बरन जन्म भर उसकी आज्ञा मानी थी। तो कहो कि उनको युद्धमें भेजनेसे राजा पर कोई अन्याय ठहरावेगा। फिर और एक दृष्टांत सुनो। एक राजाने अपने पुत्रको विद्या सीखनेके लिये एक पण्डितके हवाले किया। वह पंडित बड़ाही महात्मा विद्यावान् और चतुर था। और वह राजपुत्र भी अति सुशील और परिश्रमी और गुरुकी आज्ञाका पालक था। उस पण्डितने

उसको सब प्रकारकी विद्या सिखाईं। जब वह सब विद्यामें निपुण हो चुका तो पण्डितजी उसको राजा पास ले आये और कहा कि पृथिवीनाथ मैं आपके पुत्रको सब विद्या सिखा चुका हूं अब केवल एक बात सिखानी रह गई जो आपके पुत्रके लिये मैं बहुतही आवश्यक जानता हूं पर वह ऐसी है कि जब लों आप मुझको क्षमा दानका बचन न देवें मैं नहीं सिखा सकता। राजाने कहा महाराजजी आप ऐसा क्यों कहते हैं मैं तो अपना यह महाभाग्य समझता हूं कि आप ऐसे महात्मा मुझको मिले और मैंने तो अपने बालकको आपके हवाले किया है और मुझे यह निश्चय है कि आप जो करेंगे सो केवल भलाही करेंगे। तब पण्डितने कहा कि अच्छा एक घोड़ा मेरे लिये सिद्ध करवाइए। सो जब घोड़ा पण्डितजीके पास आया तो पण्डितजीने घोड़े पर सवार होके राजकुमारको अपने पास बुलाया। जब वह समीप आया तो पंडितने एक कोड़ा बड़े जोरसे राजपुत्रकी पीठ पर मारा और घोड़ेको दौड़ाके उसको कहा कि तुम भी घोड़के साथ दौड़ो। राजा यह देखके घबडाया और दौड़के पण्डितके पास जा कर कहा कि हे महाराज यह आप क्या करते हैं। तब पंडितने घोड़ेको ठहरा कर राजासे कहा कि पृथिवीनाथ आप मेरी इस बातको क्षमा करिये। मैं केवल आपके पुत्रका हित चाहता हूं

और मेरी समझमें उसको इस एक बातका सिखाना बहुत आवश्यक था। क्योंकि वह राजपुत्र है और उसको यह बात सर्वथा बिदित नहीं कि मार खाने और दूसरे तरहके परिश्रम करनेमें क्या दुःख होता है। इन बातोंका नाम भर वह जानता है पर उनका स्वाद उसको कुछ भी मालूम नहीं। तो परमेश्वरकी कृपासे जब यह राजसिंहासन पर बैठेगा तो उसको दूसरोंकी दुःख दर्द क्योंकर मालूम होगी और जब कोई अपराध करे तो उसके शासन करनेमें कुछ कोमलता और क्षमाकी ओर ध्यान रखनेकी बुद्धि क्योंकर उपजेगी। पर ये बातें तो अच्छे राजाओंमें आवश्यक हैं। सो जिसतें आपका पुत्र इन गुणोंसे भी रहित न रहे इसलिये मैंने यह उपाय किया है। सो देखो इस राजपुत्रने पंडितका कुछ अपराध तो न किया था तथापि उसको दुःख देनेमें पण्डितको कोई अन्यायी नहीं ठहराता। पर यदि कोई अज्ञानी जन पण्डितके अभिप्रायको न जानके केवल दूरसे यह अद्भुत चरित्र देखके अपने मनमें कहता कि देखो इस राजपुत्रसे कोई भारी अपराध हुआ है या नहीं तो पंडितने बड़ा अन्याय किया तो उसका कैसा अबिचार और साहसी पन प्रगट होता। इन सब दृष्टान्तोंमें हमारा यह तात्पर्य मत समझो कि राजा और पंडितकी बात और ईश्वरकी बात सर्वथा समान है

अथवा उन प्रजाओंकी जिनके दुःखका कारण राजा हुआ और उस राजपुत्रकी दशा और बालकों और पशुनकी दशामें सर्वथा समानता है अथवा उन सभोंके दुःखोंके फल एकही प्रकारके हैं। नहीं नहीं ऐसा हमारा तात्पर्य मत समझो। क्योंकि बहुधा वाद करनेमें ऐसा होता है कि अपने वादीका तात्पर्य न समझके उसके कोई बचनोंको पकड़के औरही प्रकारके अर्थमें ले जाते और उस पर दोष लगाते हैं। सो हम तुमसे बिनती करते हैं कि ऐसा मत करो पर यह जानो कि इन सब दृष्टान्तोंके ले आनेमें हमारा तात्पर्य केवल इस बातके दिखानेमें है कि ऐसा कुछ नियम नहीं है कि जब जब किसीको कुछ दुःख होवे तो उसीके किये हुये अपराधके सिवाय और कुछ कारण नहीं हो सकता। केवल तुम्हारे इस नियमकी निर्मूलता दिखानेहीके लिये हम उन दृष्टान्तोंको ले आये। और बालक और पशुनके दुःखोंको देखके उनके पूर्व जन्मकी अनुमिति करनेमें तो केवल वह नियमही कारण हो सकता है और यदि वह नियम झूठा ठहरे तो वह अनुमिति भी झूठी ठहरेगी। यदि तुम कहो कि राजा और पंडितके दृष्टान्त जो तुमने कहे उनसे हमारा वह नियम खण्डित नहीं होता कि जब जब कोई जीव कुछ दुःख पाता है तो बिना कुछ अपराध किये नहीं पाता। क्योंकि हमारे मतके

अनुसार जिन लोगोंने राजा और पंडितका अपराध न करके भी राजा और पंडितसे दुःख पाया है सो अपनेही पूर्व जन्मके किये हुये पापका फल पाया है इसलिये उनके दुःखका कारण भी अपराधही ठहरा तब हमारे नियमका भंग कहां हुआ। इसके उत्तरमें हम कहते हैं कि तुमने हमारे दृष्टान्तका ठीक तात्पर्य नहीं समझा। यदि उन्होंने पूर्व जन्ममें पाप किया हो तो उस करके वे ईश्वरके अपराधी ठहरेंगे पर हमारे दृष्टान्तका तात्पर्य इस बातमें है कि उन्होंने राजा और पंडितका तो कुछ अपराध नहीं किया तिस पर भी राजा और पंडित उनके दुःख देनेवाले होके भी अन्यायी नहीं कहलाते। परन्तु उसीके किये हुये अपराधके सिवाय किसीको कुछ भी दुःख देनेका यदि और कोई योग्य कारण न होता तो राजा और पंडित अवश्य इस बातमें अन्यायी ठहरते। क्योंकि जब कोई किसीका बिना योग्य कारणके घात करता है तब भी तो तुम्हारे मतके अनुसार जो मनुष्य घात किया जाता है सो अपनेही पूर्व जन्मके पापका फल भोगता है पर क्या इससे वह मनुष्य जिसने अकारण घात किया निर्दोष ठहरता है। इसलिये हमारे दृष्टान्त निश्चय करके इस बातको सिद्ध करते हैं कि किसी मनुष्यके दुःख पानेके योग्य कारण उसीके किये हुये अपराधके सिवाय और भी हो सकते हैं और

तुम्हारा वह नियम निर्मूल है। हां हर एक दुष्कर्मी-को परलोकमें जो भयङ्कर दण्ड भोगना होगा उसके विषयमें तो वह नियम ठीक है। पर इस चार दिनों-के जीवनमें जो अल्प कालके लिये क्षुद्र दुःख होते हैं उनके विषयमें वैसा नियम ठहरानेके लिये कोई पक्का और निश्चायक प्रमाण नहीं है। और यह जानो कि बालकों और पशुनको जो दुःख होते हैं सो सज्ञान मनुष्योंके दुःखकी अपेक्षासे अत्यन्त क्षुद्र हैं यद्यपि देखनेवालोंको वे अत्यन्त भयंकर देख पड़ते हैं। क्योंकि यह निश्चित है कि जितनाही ज्ञान कम होता है उतनाही दुःख कम होता है। सो सच पूंछो तो बालकोंके दुःखोंके देखनेवाले मा बाप इत्यादिकोंको जितना दुःख होता है उतना कदाचित् उन बालकों-को न होता होगा। और यद्यपि उन दुःखोंका कोई फल अभी हमारी दृष्टिमें प्रगट न हो तथापि निश्चय करके जानो कि ईश्वरने उनको किसी अत्यन्त उत्तम और शुभ परिणामके लिये होने दिया है कि जब वह हमारी दृष्टिमें प्रगट होगा तब हम कहेंगे कि इस परिणामकी भलाईके साम्हने उन दुःखोंकी बुराई कुछ चर्चाके भी योग्य नहीं है। फिर यह बात भी ईश्वरके सत्य शास्त्रसे हम पर प्रगट होती है कि इस जगतमें दुःखके प्रवेश करनेका मुख्य और आद्य कारण पापही है और हर एक जो दुःख भोगता है उसके

दुःखका दुष्कर्म अथवा दुष्ट स्वभावके साथ जो दुष्कर्म-का बीज रूप है साक्षात् अथवा परंपराका कुछ संबंध रहताही है। तथापि हम कहते हैं कि सर्वशक्तिमान् परमेश्वरके काम ऐसे गंभीर और दुर्बोध हैं और वह अपनी अचिन्त्य बुद्धिसे एक एक बातको ऐसी अनेक भिन्न भिन्न प्रयोजनोंकी उत्पादक ठहराता है कि हम यह निश्चय करके नहीं कह सकते कि जब जब कोई जीव इस जगतमें कुछ भी दुःख पाता है तब उसीके किये हुये पापके सिवाय और कोई योग्य कारण नहीं हो सकता। क्योंकि उस बातके बहुतसे योग्य कारण हो सकते हैं जिनको हमारी अल्प बुद्धि नहीं जान सकती। इस लिये बालकों और पशुओंके अथवा और किसीके कुछ दुःखको देखके झटपट ऐसा निश्चय कर बैठना कि उनका कोई पूर्व जन्म था और उसमें उन्होंने कुछ पाप किया था यह कैसी साहसकी बात है। ऐसे अद्भुत सिद्धान्तके स्थापित करनेके लिये तो कोई पक्का और निश्चायक प्रमाण चाहिये। यह तो प्रगट है कि बार बार जन्म लेनेकी बात बड़ी अद्भुत है। हां हिन्दुओंको लड़कपनसे सुनते सुनते उसका ऐसा अभ्यास हो गया है कि उनकी दृष्टिमें कुछ अद्भुत नहीं देख पड़ती परन्तु सच मुच यह बात अत्यन्त अद्भुत और झटपट बिश्वास करनेके योग्य नहीं है कि हम लोग अनादि कालसे अगणित बार

देव मनुष्य हाथी घोड़ा कुत्ता बिल्ली बांदर चूहा बिच्छू गोचर होते आये हैं। क्या ऐसे ऐसे तमाशे हम देखते आये हों और उनमेंसे एक बातका भी अब हमको स्मरण न रहे। यदि कहो कि बाल अवस्थाकी बातका और कितनी सज्ञान पनकी बातोंका भी हमको स्मरण नहीं रहता। तो हम कहते हैं कि क्या हम इतने अगणित जन्मोंमें बालकही होते आये हैं। और यद्यपि हम सज्ञान पनकी कितनी बातोंको भूल जाते हैं तथापि हज़ारों बातोंका स्मरण हमारे जीवनके साथ मानों एक हो रहता है। सच बात यही है कि सारे संसारका साधारण अनुभव यही कहता है कि हमारे जीव हमारे शरीरके साथ उत्पन्न किये गये हैं। यदि कोई कहे कि यह बात सर्वथा असंभव नहीं है कि हम हर एक नया जन्म लेते समय अगले जन्म-की बातको भूल जायें तो हम मान लेते हैं कि यह सर्वथा असंभव नहीं है। पर ऐसी बहुतसी बातें हैं जो सर्वथा असंभव नहीं हैं तथापि उनको हम झट-पट नहीं मान सकते। क्या यह बात सर्वथा असंभव है कि हाथियोंको पंछीके समान पंख फूट निकलें और वे आकाशमें उड़ने लगें। तथापि यदि कोई मनुष्य आ कर हमको ऐसी बात कहे तो हम एका एक उसके बचन पर बिस्वास न करेंगे। हां यदि वह अपनी बातकी सचाईके लिये कोई अत्यन्त प्रबल

प्रमाण दिखावे तो तब हमें उस बातको भी मानना पड़ेगा नहीं तो नहीं। क्योंकि यह जानो कि जो बात जितनीही अधिक अद्भुत हो उसके लिये उतनाही अधिक प्रबल प्रमाण चाहिये। सो तुम्हारी बार बार जन्म लेनेकी अद्भुत बातके लिये कोई पक्का और निश्चायक प्रमाण नहीं है इसलिये उस पर भी बिश्वास नहीं कर सकते। क्योंकि यह जो तुम्हारा नियम है कि जो जो किसी जीवको कुछ दुःख होता है उसका योग्य कारण उसीके किये हुये पापको छोड़ और कुछ नहीं हो सकता सो अत्यन्त दुर्बल है। राजा और पंडितके दृष्टान्तोंमें हमने दिखाया कि उसके और भी योग्य कारण हो सकते हैं। और यह भी जानो कि राजा और पंडितके व्यवहारसे परमेश्वरका व्यवहार तो अनन्त गुणित अधिक बिशाल और गंभीर है। इसलिये राजा आदिके व्यवहारमें जहां एक कारण हो तहां कौन जान सकता है कि परमेश्वरके व्यवहारमें कितने कारण होंगे। क्या तुम परमेश्वरके सम्पूर्ण बिचारका पता लगा सकते हो और हर एक बातके विषयमें निश्चय करके कह सकते हो कि यही इसका कारण है और दूसरा कुछ नहीं हो सकता। इस विश्वमें ऐसे अगणित पदार्थ हैं जिनका प्रयोजन हम तुम कुछ भी नहीं बता सकते तो क्या उनके विषयमें कहोगे कि इसका कुछ प्रयोजन

है ही नहीं। ईश्वरका यह विश्व रूपी यन्त्र ऐसा विशाल है कि इसका अन्त नहीं लग सकता। इसमें जो अगणित पदार्थ हैं उनमेंसे हर एकके क्या जानिये क्या क्या गुप्त कारण हैं और क्या क्या फल हैं और क्या जानिये एक एकका कितनी और अगणित बातोंसे संबंध है। उन सभों पर दृष्टि करके परमेश्वरने इस यन्त्रको बनाया है और उसको आप चलाता है। इस महा विशाल यन्त्रमेंसे केवल एक भागके भी अत्यन्त छोटे भागको हम देखते हैं और जब हमको मालूम पड़ता है कि यदि यह बात ऐसी न होती तो अच्छा होता तब हम उस पर शंका करने लगते हैं। परन्तु परमेश्वर जिसकी दृष्टि उस सम्पूर्ण यन्त्र पर है और जो जानता है कि इसमेंकी हर एक बातका कौन कौन बातके साथ संबंध है और हर एकका क्या फल है और सब मिल कर अन्तको कैसे परिणामको प्रगट करेंगी वही जानता है कि मैंने जो बात जैसी बनाई है वह सर्वथा ठीक और अपने योग्य स्थान पर है। जब किसान अपने बहुमूल्य बीजको मिट्टीमें डालता और उस परसे पटिया फेरता है तब यदि कोई अज्ञानी जन उसे कहे कि अरे यह तूने क्यों बीजका नाश किया तो क्या वह किसान हंसके न कहेगा कि थोड़ासा धीरज धरो तो देखोगे कि जिसको तुम अभी नाश समझते हो

उसका परिणाम अंतको अत्यंत शुभ और हितकारी होगा। इसी प्रकारसे जानो कि ईश्वरने भी जो यह विश्व रचा है सो अत्यंत उत्तम परिणामके लिये रचा है पर अभी हम उसको नहीं जान सकते बरन कितनी बातें हमको उलटी पुलटी और कितनी निष्फल और अयोग्यसी भी जान पड़तीं हैं। क्योंकि परमेश्वरके इस विश्व रूपी महा यन्त्रके चलानेके जो नियम हैं और उसके विषयमें जो उसके विचार हैं सो ऐसे गभीर हैं कि हमारी तो क्या बरन स्वर्गीय दूतोंकी भी बुद्धि चकित हो जाती है। उसके बिचारकी नेंवें अनादि भूत कालमें धरी गई हैं और उसके शिखर मानों अनंत भविष्य कालमें घुसे हुये हैं। पर निश्चय करो कि सब बातें मिलके अन्तको ऐसे उत्तम परिणामको प्रगट करेंगीं कि जिसमें परमेश्वरका महिमा और उसके परम सुंदर गुणोंका प्रकाश होगा। परंतु पंडित लोग इन बातोंको नहीं विचारते उनकी बुद्धिका यही दोष है जिसकी हम पहिले भी चरचा कर चुके। वे परमेश्वरके भी सब काम और अभिप्रायको यूं बिचारने लगते हैं कि जैसे किसी मनुष्यके। उनका मन इस बात पर प्रतीति नहीं कर सकता कि परमेश्वरके बिचार और काम हमारी बुद्धिसे अत्यंत परे हो सकते हैं ऐसा कि हम कितना भी उनका पता लगाने चाहें तथापि न पा सकें। वे

इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि इस परमेश्वरकी सृष्टिमें ऐसी अगणित बातें हो सकती हैं कि यद्यपि उनका कोई कारण हमको न मालूम हो तथापि उनके अनेक योग्य कारण हो सकते हैं जिनको परमेश्वरही जानता है। इसीलिये वे हर एक बातका अपनोही अल्प बुद्धिसे ठिकाना लगाने चाहते और मन माने नियम और सिद्धांत ठहराते हैं। यही उनकी सब भूल चूकका कारण है। पर हम तुम्हारी बिनती करते हैं कि ऐसी बिचारकी रीति छोड़ दो क्योंकि यह अत्यंत कची रीति है। पर अबसे नई रीति सीखो तो कभी भूलमें न पड़ोगे। जब तुम परमेश्वरके विषयमें कोई बात बिचारने लगते हो तो पहिले देखो कि कौन कौन बात हमारी बुद्धिकी सीमाके भीतर है और उस बातमें बुद्धिको दौड़ाओ और बिचार करो। पर जो बात हमारी बुद्धिसे परे है उसके विषयमें चुप रहनाही बुद्धिका पूर्ण लक्षण है। क्या जानिये कि परमेश्वरने इसीलिये अपनी सृष्टिमेंकी कितनी बातोंके कारण हमसे गुप्त रक्खे हों जिसतें हम नम्रता और ईश्वरकी उत्तमता पर दृढ़ विश्वास करना सीखें। और यही भक्तिका एक बड़ा लक्षण है कि यद्यपि हम परमेश्वरकी कितनी बातोंको ऐसा देखें जिनका कुछ भी कारण हमको न जान पड़े बरन हमारी अल्प दृष्टिमें वे अयोग्य भी

दिखाई देवें तथापि हम अपने मस्तकको नंवाके और अचल बिश्वाससे मान लेवें कि वे सब उत्तम और योग्य हैं। और इस बातमें हमारी नम्रता और बिश्वासकी दृढ़ताकी परीक्षा है। पर इस विषयमें एक बात आवश्यक है कि पहिले हमको यह निश्चय हो कि यह बात परमेश्वरहीकी है तब अलबत्ता हमको नम्रतासे उसको मानना योग्य होगा। पर तुम्हारे वेद पुराणोंमें जो बातें ईश्वरके विषयमें लिखी हैं उन पर यह बात नहीं लगा सकते क्योंकि उनके विषयमें यह निश्चय नहीं हो सकता कि वे ईश्वरकी ओरसे हैं। बरन हजारों बातोंसे यह अत्यंत स्पष्ट होता है कि वेद पुराणादिक ग्रंथ केवल मनुष्योंकी कल्पना है। परंतु जो बातें हम साक्षात् ईश्वरकी सृष्टिमें देखते हैं जैसे कि बालकादिकोंका दुःख भोगना इत्यादि उनके विषयमें तो कुछ संदेह नहीं कि वे ईश्वरकी ओरसे हैं अथवा नहीं। और उन्हीके विषयमें हमने कहा कि नम्रतासे मान लेना चाहिये॥

और इसी प्रसंगमें हम और भी एक बात तुमसे कहते हैं कि ख्रिस्तीय शास्त्रमें भी जो परमेश्वरका सत्य शास्त्र है बहुतसी ऐसी बातें हैं जो हमारी बुद्धिमें नहीं आ सकतीं। परंतु ख्रिस्तीय शास्त्रमें यह एक उत्तमता है कि जो जो बातें उसमें शंका करनेके योग्य हैं सो केवल वेही हैं जो हम साक्षात् ईश्वरकी

सृष्टिमें देखते हैं अथवा ठीक वैसीही हैं। इसलिये यदि कोई उन बातोंके कारणसे ख्रिस्तीय शास्त्रकी सच्चाई पर संदेह करेगा तो उसको ईश्वरकी सृष्टि पर भी संदेह करना पड़ेगा। इसलिये यदि हम ख्रिस्तीय शास्त्रमें वेही बातें पाते हैं जो ईश्वरकी सृष्टि-में साक्षात् देखते हैं तो हम क्योंकर उस पर शंका करें। केवल यही एक दोष कदाचित् तुम ख्रिस्तीय शास्त्र पर लगाओगे कि वह ऐसी कठिन कठिन बातों-का कारण हमको क्यों नहीं बतलाता जिसतें हमारी शंका दूर हो जायं। पर देखो क्या ईश्वर अपनी सृष्टिकी कठिन कठिन बातोंका कारण हमको बतलाता है। तो केवल कारण न बतलानेसे क्योंकर दोष लगा सकते हैं। बरन इसमें तो ख्रिस्तीय शास्त्रकी अधिक उत्तमता प्रगट होती है। क्योंकि वह ईश्वरका शास्त्र है मनुष्यका नहीं इसलिये वह हमको गुरु और प्रभुके समान सिखाता है और आज्ञा करता है न कि वादी होके हमसे वाद करने चाहता है। और जिस प्रकारसे हमको ईश्वरकी सृष्टिकी उन बातोंको जो हमारी समझमें नहीं आतीं नम्रतासे मान लेना योग्य है वैसाही ईश्वरके शास्त्रमेंकी भी वैसी बातोंको नम्रतासे मान लेना अवश्य है क्योंकि हमने कहा कि इस शास्त्रकी जिन जिन बातों पर शंका होती है वे केवल वेही हैं जो ईश्वरकी सृष्टिमें देख पड़ती हैं

अथवा ठीक वैसीही हैं। इसके सिवाय ख्रिस्तीय शास्त्रके ईश्वरीयत्वके सिद्ध करनेके लिये अनेक अंतर्गत और बाह्य प्रमाण भी हैं। यदि तुम उन ग्रंथोंको जो उस शास्त्रके प्रमाण निरूपण पर लिखे हैं पढ़ोगे और बिचारोगे तो यह बात तुमको मालूम होगी। सो जब कि इस बातके साधक अनेक प्रमाण हैं कि ख्रिस्तीय शास्त्र ईश्वरीय है तो उसकी बातोंको मान लेना आवश्यक है। पर ये दोनों बातें वेद पुराणादिकोंमें नहीं। क्योंकि पहिले तो जो बातें उनमें शंकाके योग्य हैं सो कुछ वे नहीं हैं जिनको हम साक्षात् ईश्वरकी सृष्टिमें देखते हैं। फिर वे कुछ ऐसी गंभीर और गहन भी नहीं हैं जिनके विषयमें हम कह सकें कि हां ये बातें हमारी बुद्धिसे परे हो सकतीं है। बरन वे ऐसी हैं कि जिनके पढ़नेसे बिचार करनेसे और माननेसे मनुष्यका स्वभाव और मन अत्यन्त भ्रष्ट होता है। जैसे ब्रह्मा विष्णु महादेव कृष्ण इत्यादिकोंके भ्रष्ट चरित्र हैं। और यह उनके लिये एक स्पष्ट प्रमाण है कि वे कुछ ईश्वरकी उन गंभीर और गहन बातोंमेंसे नहीं हैं बरन मनुष्योंके भ्रष्ट स्वभाव और मनके सोतेसे निकली हैं। फिर दूसरी बात जो ख्रिस्तीय शास्त्रके लिये है सो भी वेद पुराणादिकोंके लिये नहीं है। अर्थात् उनके लिये कोई ऐसे अन्तर्गत और बाह्य प्रमाण नहीं हैं जिनसे उनका

ईश्वरकी तरफसे होना सिद्ध हो बरन इसके उलटा जिधर जिधरसे उनको परखते हैं उधरसे उनकी झूठाईही सिद्ध होती है ॥

अब हम इस प्रासंगिक बिचारको छोड़के फिर न्याय और वैशेषिककी बातोंका बिचार करें। जीवोंके अनादि माननेमें न्यायके मतमें यह भी एक बड़ा दोष ठहरता है कि ईश्वर और जीवमें जो वास्तविक संबंध है उसमें न्यूनता आती है तब उस संबंधके कारणसे जीवोंको जो जो ईश्वरके विषयमें करना है उसमें भी न्यूनता आती है। क्योंकि जब हम इस बातको मानते हैं कि हमको जीव शरीर समेत ईश्वर-हीने उत्पन्न किया है और हमारी स्थिति और जो कुछ हमारा है सब उसीसे है तब हम पर ईश्वरका पूर्ण अधिकार ठहरता है और इस कारणसे हमको यह उचित ठहरता है कि अपने सर्व अन्तःकरणसे और सर्व भावसे ईश्वरसे प्रेम करें उसका आदर करें और उसके हो रहें। पर जब कोई ऐसा माने कि जीव तो स्वतःसिद्ध है और जो कुछ वह ईश्वरसे पाता है सो अपनेही कर्मसे पाता है तब तो ईश्वरका स्वामित्व जीव पर अत्यंत एकदेशी ठहरा इसलिये जीवको भी जो कुछ परमेश्वरका प्रेम और आदर करना है सो भी एकदेशीही ठहरेगा ॥

---

३ तीसरा अध्याय।

जिसमें न्याय और वैशेषिक और और दर्शन कर्त्ताओंका जीवकी दुर्दशाके अर्थात् उसके बंधके कारण और उससे छूटनेके उपायके विषयमें जो मत है उसकी परीक्षा है और धर्माधर्मके यथार्थ स्वरूपका संक्षेपमें वर्णन है और दर्शनकारोंका धर्माधर्म और उनके फल आदिके विषयमें जो मत है उसकी परीक्षा है।

अब और एक बात जो हमको जानना अवश्य है सो यह है कि हम जीवकी दुर्दशा और उसके कारण-को और उसके दूर होनेके उपायको जानें पर इन बातोंके विषयमें जो वर्णन न्याय और वैशेषिक और और दर्शनोंमें किया है उसमें भी बहुत भूल है। सब दर्शनकार इस बातको तो मान लेते हैं कि सब मनुष्य दुर्दशामें हैं और उनके मतके समान दुर्दशा यही है कि बार बार जन्म लेना अनेक दुःख भोगना इत्यादि। परंतु हमारी समझमें यह मनुष्योंकी दुर्दशा नहीं है परंतु सच मुच जो उनकी दुर्दशा है सो इससे भी अत्यंत भयङ्कर है। पर भला इस बातको छोड़के यदि हम उनसे पूछें कि जो कुछ मनुष्योंकी दुर्दशा है उसका कारण क्या है तो वे कहते हैं कि अज्ञान है और वह अज्ञान यही है कि मनुष्य अपनेको शरीरादिकोंसे अभिन्न समझता है। फिर यदि हम पूछें कि ऐसा समझनेसे क्या हानि होती है। तो वे कहते हैं कि शरीरको आत्मासे अभिन्न माननेसे राग द्वेष उत्पन्न

होते हैं उस करके मनुष्य भले और बुरे काम करने लगता है उनसे धर्म और अधर्म उत्पन्न होते हैं तब उनके फल भोगनेके लिये बार बार जन्म स्वर्ग नरक और सुख दुःख प्राप्त करना पड़ता है और यही मनुष्यकी दुर्दशा है। इसलिये वे समझते हैं कि जब जीवको यह ज्ञान प्राप्त होगा कि मैं शरीरादिकोंसे भिन्न हूं तब सारी दुर्दशासे छूट कर मुक्त होगा। इस बातका पूरा बर्णन प्रथम भागके दूसरे अध्यायमें देख लेओ। पर इस विषयमें शास्त्रकारोंके जितने सिद्धान्त हैं उन सभोंमें हमको बड़ीही भूल देख पड़ती है जिसका हम क्रमसे इस अध्यायमें बर्णन करते हैं और पढ़नेवालेसे हम यह बिनती करते हैं कि यह विषय बड़ा भारी है क्योंकि यह हमारे अनमोल आत्माके निस्तारसे संबंध रखता है इसलिये पक्षपात-को छोड़के मनकी स्थिरता और धीरजके साथ इन बातोंको सोचे॥

पहिले तो ऐसे मनुष्य बहुतही थोड़े होंगे जो शरीर और आत्माको सर्वथा अभिन्न समझते हों। प्रायः सब मनुष्य जानते हैं और मानते हैं कि आत्मा जो चेतन है और शरीर जो जड़ है उन दोनोंके तत्त्व भिन्न २ हैं। पर तुम कहते हो कि सब मनुष्य कहते हैं कि मैं काला हूं गोरा हूं इससे प्रगट होता है कि उनको इस विषयमें अज्ञान है। तो हम कहते हैं कि

ऐसा कहनेमें कुछ अज्ञान नहीं है। क्योंकि यद्यपि आत्मा और शरीर तत्त्वसे भिन्न हैं तथापि उन दोनों-में परमेश्वरने ऐसा दृढ़ सम्बंध रक्खा है कि माना वे दोनों मिलके एक हो रहे हैं और उन दोनोंको मिलाके मनुष्य कहते हैं। इसलिये जब मनुष्य कहता है कि मैं तब वह केवल अपने आत्माको अथवा केवल शरीरको नहीं कहता परन्तु दोनोंको मिला कर कहता है। और इसीलिये यद्यपि वह शरीरकी बातें अपने पर लगावे जैसे मैं काला गोरा इत्यादि अथवा आत्माकी बात अपने पर लगावे जैसे मैं ज्ञानी अज्ञानी इत्यादि तो इससे यह नहीं सिद्ध होता कि उसको यह बात मालूम नहीं है कि मेरा आत्मा शरीरसे भिन्न है। यह तो प्रगट है कि मनुष्य कभी२ संपत्ति आदिको भी मानों अपने साथ एक करके मानते और संपत्तिके क्षीण होनेसे कहते कि हम क्षीण हो गये पर इस बातका किसको विश्वास होगा कि ऐसा कहनेवाले लोग सच मुच संपत्तिको अपना आत्माही समझते हैं। फिर यह बात बोलनेवालेकी इच्छाके अधीन है। क्योंकि यह तो स्पष्ट है कि शरीर और आत्माके बीचमें मनुष्यका मुख्य और उत्तम भाग तो आत्माही है इसलिये कभी२ मनुष्य अपनेको केवल आत्माही मानके और शरीरको केवल एकदेश जानके ऐसा भी कहता है कि मेरा शरीर मैं इस

शरीरको छोड़के जाऊंगा इत्यादि। सो तुम जो काला हूं गोरा हूं ऐसे वाक्योंसे मनुष्योंको महा अज्ञान कूपमें गिरे समझके उस अज्ञानको सारे अनर्थका कारण ठहराते हो सो सर्वथा निर्मूल है॥

फिर यद्यपि कितने लोग ऐसे अज्ञानी हों कि शरीरहीको आत्मा समझें तथापि उनको यह सिखाने-से कि तुम्हारा आत्मा शरीरसे भिन्न है वे भले और बुरे कामोंके करनेसे न बच सकेंगे। पर पण्डित लोग समझते हैं कि उनका ऐसा जानना अवश्य उनको भले और बुरे कामोंसे बचावेगा। क्योंकि जब मनुष्य आत्माको शरीरसे भिन्न समझेगा तब वह यह भी मानेगा कि शरीरके नाशके साथ आत्माका नाश नहीं होता बरन वह मरनेके अनन्तर भी रहता है और उसको अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। और जब वह यह सोचेगा कि पाप और पुण्यके फल भोगनेके लिये कैसे नरकमें और स्वर्गमें जाना पड़ता और यद्यपि स्वर्गमें सुख मिलता है तथापि वह कैसे अनेक प्रकारके दुःखसे मिश्रित रहता है और अन्तको जब उसका भोग पूरा होता है तब कैसे वह सुख भी दुःखका कारण होता है वैसेही बार२ जन्म मरणके चक्रमें भ्रमते फिरना और अनेक सुख दुःख भोगते रहना इत्यादि कैसी बड़ी दुर्दशा है और शास्त्रोंके अनेक हितोपदेशोंसे जब उसकी दृष्टिमें इस लोक

और परलोकके समस्त सुखोंकी अत्यन्त तुच्छता प्रगट हो जायगी तब वह मनुष्य अवश्य करके पुण्य और पापसे उदास होके सुकर्म और दुष्कर्मके करनेसे अलग रहेगा। इसके उत्तरमें हम कहते हैं कि यह आशा व्यर्थ है। क्योंकि हम कह चुके कि बहुधा सब मनुष्य इस बातको जानते हैं कि आत्मा शरीरसे भिन्न है। तुम जाके किसी मनुष्यको जो बड़ाही मूर्ख है इस विषयमें पूछो तो वह भी कहेगा कि हां मरनेके पीछे मुझको अपने कर्मोंका फल भोगना है। पर क्या वह ज्ञान उनको सुकर्म दुष्कर्मसे अलग रख सक्ता है। पर कदाचित् यह कहो कि वे मूर्ख लोग यद्यपि इस बातको जानते हैं तथापि उस पर अच्छे प्रकारसे मन नहीं लगाते इसलिये उनके राग द्वेष दूर नहीं होते पर जो इन बातोंका श्रवण मनन निदिध्यासन करेंगे उनके क्यों न दूर होंगे। पर हम कहते हैं कि मनुष्यके स्वभावकी दशाका अच्छे प्रकारसे बिचार करनेसे यह बात स्पष्ट होती है कि इतना सब करनेसे भी राग द्वेष सर्वथा दूर नहीं हो सक्ते। यहां एक बात हमको कहना आवश्यक है कि तुम जो सुकर्म और कुकर्म दोनोंको बन्धका कारण समझते हो सो हमारी समझमें अत्यन्त अयोग्य है और इस विषयमें जो पंडितोंकी भूल है उसको हम थोड़ा आगे चलके दिखाते हैं। पर दुष्कर्म तो

सच मुच बन्धका कारण है और उससे अलग रहना अत्यन्त आवश्यक है। और चाहता तो था कि मनुष्य लोग दुष्कर्मके भावि दण्डको सोचके उससे अलग रहते। पर बड़े खेदकी बात है कि मनुष्यका स्वभाव ऐसा बिगड़ा है कि यद्यपि वह कितना भी विचार करे तथापि सर्वथा सर्व प्रकारके कुकर्मसे अपनेको बचाना यह बात उससे कभी नहीं हो सक्ती। हां तुम जो सुकर्मसे बचनेके लिये इतनी चिन्ता करते हो सो कुछ आवश्यक नहीं है। क्योंकि मनुष्य यहां लों बिगड़ा है कि जो वह अच्छेसे अच्छा काम भी करे तथापि उसमें बहुत कुछ दुष्टता और न्यूनता रहती है और काया बाचा और मनकी पूरी शुद्धतासे एक अच्छा कर्म भी उससे नहीं होता और इसलिये यद्यपि ऐसे कामोंसे मनुष्योंमें कोई प्रशंसा पावे तथापि ईश्वरकी दृष्टिमें जो हर एककी बाह्याभ्यन्तर दशाको जानता है उसका सुकर्म भी दुष्कर्मही ठहरता है। इसलिये जानो कि बेचारे मनुष्य सुकर्मसे तो आपसे आपही बचे हैं उसके लिये उपाय बताना आवश्यक नहीं। पर रहा दुष्कर्मसे बचना सो तो मनुष्यके किये हुये कोई उपायसे नहीं हो सक्ता। क्या केवल ऊपर ऊपरकी चोरी हत्या व्यभिचार लड़ाई झगड़ा अन्याय इत्यादिक सेबचे रहना यही सब कुकर्मसे बचना है। नहीं नहीं। मनुष्यका सारा कर्त्तव्य कर्म इन दो बातोंमें है

कि वह अपने सारे अन्तःकरणसे और अपनी सारी बुद्धिसे और अपने सारे बलसे ईश्वरको प्यार करे और दूसरी बात यह कि अपने समान सब मनुष्योंको प्यार करे। और कोई काम इन दो बातोंके विरुद्ध करना अथवा इन बातोंमें कुछ न्यूनता करना पाप कर्म ठहरता है। पर इन दो बातोंका पूरा करनेवाला वही कहलावेगा जिसकी सारी इच्छाओंमें और मनकी सारी चिन्ताओंमें और सारे बचन और सारे कामोंमें ऊपर कहे हुये ईश्वर और मनुष्यके प्रेमके विरुद्ध एक बात भी न पाई जावे। पर ऐसा कौन हो सक्ता है। प्रायः मनुष्य अपनेही भीतरके दोषोंको आपही नहीं जानते पर वे उनसे छिपे रहते हैं और कितनी ऊपर ऊपरकी अच्छी क्रियाओंको देखके अपनेको सराहते हैं कि हम तो अच्छे हैं। पर जब मनुष्य विवेकका दीपक लेकर अपने मनकी अंधियारी कोठरीमें नित्य२ बरन घड़ी२ पैठा करेगा और उसमेंके हर एक कोनेको देखेगा और अपनी हर एक चिन्ता और वचन और कामको तौलेगा बरन इसी बातका श्रवण मनन निदिध्यासन करेगा तब उसको यह साक्षात्कार होगा जो अलबत्ता बड़े कामका है कि हाय मैं तो अधम पतित दुर्बल निरुपाय पापी हूं। क्या जानिये कितनी छिपी हुई अहंकारकी बातें कितनी दम्भकी कितनी कपटकी कितनी आपस्वार्थीपनकी और

कितनी श्रार अगणित प्रकारकी बातें जिनका वर्णन नहीं हो सक्ता वह अपनेमें पावेगा श्रार उसको यह निश्चय होगा कि जैसा परमेश्वरका प्रेम चाहिये वैसा मुझमें नहीं है। भाइयो मनुष्यकी यह दशा है। इसी-लिये जानो कि मनुष्य न ज्ञानसे न करनीसे बच सकेगा पर केवल परमेश्वरके स्वतन्त्र अनुग्रहसे जिसके प्राप्त करनेका उपाय ईश्वरके सत्य शास्त्रमें लिखा है॥

फिर तुम तो आप मान लेते हो कि जिस मनुष्य-को पूर्ण ज्ञान होता है जिसको तुम जीवन्मुक्त कहते हो उससे भी जब लों वह शरीरमें है तब लों पाप पुण्यकी क्रिया होती हैं। क्योंकि तुम कहते हो कि ज्ञानीका संचित कर्म नष्ट होता है श्रार क्रियमाण उसको लिप्त नहीं कर सक्ता। तो इससे सिद्ध है कि पाप पुण्यकी क्रिया उससे होती है तब यह बात कहां सच ठहरी कि इन सबका कारण अज्ञानही है श्रार तुम्हारे इस ज्ञानीमें श्रार अज्ञानीमें क्या भेद ठहरा। यदि तुम कहो कि यही बड़ा भेद है कि अज्ञानीके शुभाशुभ कर्म उसको बद्ध करते हैं पर ज्ञानीको उसके कर्म बद्ध नहीं कर सक्ते तो इस बातकी भूल हम आगे चलके प्रगट करेंगे॥

इस विषयमें जो श्रार अधिक भूल दर्शनकार करते हैं सो यह है जो वे कहते हैं कि धर्म भी जीवके लिये बंधनरूपही है। यह दर्शनकारोंकी कैसी बात

है क्योंकि अधर्म तो बंधन है सही पर धर्म किस प्रकारसे बंधन होगा। पर सच बात यह है कि दर्शनकारोंको धर्माधर्मके तत्त्वका ठीक ज्ञान नहीं है इसीलिये वे ऐसी नानाविध भूलमें पड़ते हैं। इसलिये अब हम पहिले धर्माधर्मके स्वरूपका संक्षेपमें वर्णन करेंगे तब पीछेसे दिखावेंगे कि दर्शनकर्ता इसमें कैसी भूल करते हैं॥

ईश्वरने मनुष्यको विवेकवान् प्राणी बनाया है। ऐसा कि उसमें ईश्वरको जाननेकी और ईश्वरमें और अपनेमें जो संबंध है उसको जाननेकी और अपनेमें और सृष्टिके और पदार्थोंमें जो संबंध है उसको भी जाननेकी योग्यता है। और इसी प्रकारसे अपने जन्मदाता और स्वामी ईश्वरके विषयमें आदर और प्रेम करनेकी और सृष्टिके जो और पदार्थ हैं उनमेंसे जिसके साथ जैसा व्यवहार करना उचित है उसके साथ वैसा व्यवहार करनेकी भी उसमें योग्यता है। फिर उसमें यह भी योग्यता है कि इन बातोंके करनेको वह भला समझता है और उसके विरुद्ध करनेको बुरा समझता है। सो यह सब योग्यता जिसमें है उसीको हम विवेकवान् प्राणी कहते हैं। सो अब समझो कि मनुष्यके इस प्रकारका विवेकवान् प्राणी होनेके कारणसे उसके पद और स्वभावके अनुसार कितनी बातें उसके लिये स्वभावतः उचित

ठहरती हैं जैसे ईश्वरभक्ति न्याय सत्य दया इत्यादि। और कितनी बातें उसके लिये स्वभावतः अनुचित ठहरती हैं जैसे नास्तिकता परापकार निर्दयता मिथ्या भाषण इत्यादि। सो इस प्रकारसे जो जो बात मनुष्यको अपने स्वभावके अनुसार उचित ठहरती है वही धर्म है और जो जो अनुचित है सोही अधर्म है। अब परमेश्वर स्वभावतः उत्तम और न्यायी है इसलिये जो जो क्रिया मनुष्यको उचित है सोई स्वभावतः उसको इष्ट होती है और जो जो अनुचित है सो अनिष्ट होती है। और परमेश्वरको अपने न्यायी स्वभावहीके कारणसे अवश्य है कि वह धर्मी पर अनुग्रह करे और अधर्मीको दंड देवे॥

सो इसमें तीन बातोंको ध्यानमें रखना चाहिये। पहिले यह कि ईश्वरने धर्माधर्मके नियमको बिना कारण यहच्छासे नहीं स्थापित किया है परंतु मनुष्योंके स्वभाव और पदके अनुसार जो उसको उचित ठहरता है उसको धर्म और जो अनुचित ठहरता है उसीको अधर्म ठहराया है। इसलिये मनुष्यको अधर्माचरण करना किसी दशामें योग्य न ठहरेगा और धर्म करना किसी दशामें अयोग्य अथवा अनावश्यक नहीं ठहरेगा। दूसरे यह कि ईश्वर जो धर्मी पर अनुग्रह करता और अधर्मीको दंड देता है सो कुछ इसलिये नहीं कि हमारे धर्माधर्मसे उसको कुछ

लाभ अथवा हानि है। परंतु यह केवल उसके न्यायी स्वभावके कारणसे है। क्योंकि न्याय गुणका यही स्वभाव है कि धर्मीको उसकी साधुताके शुभ फल भोगवाना और दुष्टको उसकी दुष्टताका कड़वा फल चखाना। सो यदि यह बात ईश्वरमें न हो तो वह न्यायी न रहेगा। और तब यह एक उसके निरतिशय उत्तम और पूर्ण स्वभावमें न्यूनता ठहरेगी। तीसरी बात यह है कि धर्म और अधर्मसे जो इष्ट और अनिष्ट फल होते हैं सो उन क्रियाओंसे आपसे आप नहीं निकलते परंतु उन क्रियाओंके अनुसार उनके फलोंका देनेवाला ईश्वर है। यह तो है कि धर्माचरण मनुष्यके स्वभाव और पदके ऐसा अनुकूल है और अधर्माचरण ऐसा प्रतिकूल है जिसके कारणसे जब मनुष्य धर्माचरण करता है तब आपसे आप उससे मनका सुख और शांति पाता है और अधर्मका पीछा करनेसे मनकी व्याकुलता भोगता है। तथापि धर्माधर्मके उन स्वाभाविक फलोंको छोड़ दिव्य लोकका आनंद और नरककी पीड़ा इत्यादिक जो अनेक फल हैं सो सब उन क्रियाओंसे आपसे आप नहीं निकल सकते परंतु ईश्वर उन्हें देता है॥

यही धर्म अधर्म और उनके फलोंका वृत्तांत है परंतु मनुष्यकी मति ईश्वरके न्याय पवित्रतादि गुणोंके विषयमें जब अंधी हो गई तब उसकी धर्माधर्मकी

पहिचान भी मलिन हो गई और उसने इस विषयमें अनेक प्रकारके विपरीत मतोंकी कल्पना की। यहांके दर्शनकारोंकी यही दशा भई। धर्माधर्मके नियमका जो कारण हमने बताया उसको वे नहीं जानते क्योंकि यदि वे जानते तो न कहते कि धर्म और अधर्म दोनों बन्धके कारण हैं और जो मुक्तिकी इच्छा करता है उसको दोनोंसे रहित होना चाहिये॥

नैयायिक वैशेषिक और दूसरे दर्शनकर्ता धर्मको भी बन्धका कारण समझते हैं इसका हेतु यह है। वे कहते हैं कि धर्म कर्म जीवको मुक्त होनेसे रोकता है। क्योंकि मुक्ति तो वही कहलाती है जिसमें जीव शरीर मन और ज्ञान इच्छादिकोंसे रहित होता है परन्तु धर्म कर्म अपने सुखरूपी फल भोगावनेके लिये जीवको बरबस देव मनुष्यादिकोंका शरीर धारण कराता है जब लों उसका भोग न हो चुके। फिर धर्म कर्मका फल जो सुख है सोभी विवेकवान्के चाहनेके योग्य नहीं है क्योंकि वह दो प्रकारसे दुःख मिश्रित है। पहिले यह कि वह क्षय होनेवाला है। क्योंकि उनका नियम है कि जो जो उत्पन्न होता है सो विनष्ट होता है इसलिये धर्मका फल भी नष्ट होगा। और जब मनुष्यको कोई सुख मिलता है तब वह सुखी होता है पर जब वह सुख नष्ट होता है तब उससे दुःख होता है इसलिये ऐसा सुख भी दुःख-

रूपी है। दूसरे यह कि धर्मके फलमें भी तारतम्य है अर्थात् जिसका धर्म कम है उसको कम फल मिलेगा और जिसका धर्म अधिक है उसको अधिक फल मिलेगा। सो जिसने कम फल पाया है वह अधिक फल पानेवालेको देखके दुःखित होगा इसलिये भी उसका सुख दुःखरूपीही ठहरा। इस प्रकारसे सब सुख दुःखरूपी हैं इसलिये सुख और दुःखसे छूटके जड़वत् हो रहनाही परम पुरुषार्थ है॥

पर देखो यह कैसी बड़ी भूल है। हमने दिखलाया कि परमेश्वरने उसीको धर्म कर्म करके ठहराया है जो मनुष्यके स्वभावके अनुसार उसको उचित और अत्यन्त आवश्यक ठहरता है और जिसके न करनेसे मनुष्य न्यायके अनुसारसे दोषी और दण्डके योग्य होता है तो जो कर्म मनुष्यको ऐसा उचित और आवश्यक है क्या उसका फल कभी अनिष्टरूप हो सकता है। तुम्हारी समझमें जो सुख धर्म कर्मका फल है उसकी आकांक्षा करना यदि विवेकीको अयोग्य है तो वह एक अनिष्ट वस्तुही ठहरी। फिर यदि ज्ञान इच्छादिसे रहित होके जड़रूप बननेहीमें तुम जीवका सच्चा कल्याण समझते हो तो बरन तुमको ऐसीही दशाको धर्मका फ़ल कहना उचित होता। इस विषयमें तुम्हारी कैसी उलटी पुलटी समझ है। क्या परमेश्वरने इस धर्माधर्मके नियमको बिना कुछ कारण केवल

चिड़ियोंकी नाईं जीवोंको बझा कर उनका कौतुक देखनेके लिये एक जाल बना रक्खा है। कि मानों कितने कर्मोंको पाप कर्म और कितनोंको पुण्य कर्म ठहरा दिया है कि वे कभी इस फन्देमें और कभी उस फन्देमें फंसा करें। पर यदि ईश्वरने केवल अपने न्यायी और उत्तम स्वभावके कारण उन्हीं क्रियाओंको पुण्य क्रिया करके ठहराया है जो जीवके स्वभावके अनुसार उसको उचित और अत्यन्त आवश्यक ठहरती हैं तो वह परमेश्वर जो दयाका और भद्रताका सागर है और सभोंका पिता होके सभोंका केवल कल्याणही चाहता बरन अनुचितकारियोंके भी कल्याणके लिये एक राह और उपायकी कल्पना करता है सो क्या उचितकारीको वही बात न देगा जिसमें उसका सत्य कल्याण है बरन क्या उसके बदले उसको अनिष्ट फल देगा। पर सच बात यह है कि जड़ताकी दशा प्राप्त करना सच्ची मुक्ति नहीं है और जो लोग ईश्वरके अनुग्रहसे सच्ची मुक्तिके अधिकारी होते हैं उनको ज्ञान इच्छादिकोंसे कुछ हानि नहीं है इस बातको हम आगे चलके दिखावेंगे॥

फिर तुम जो कहते हो कि धर्मका फल जो सुख है सो क्षय होनेवाला है सोभी ठीक नहीं। यह बात तो हम आगेही दिखा चुके कि तुम्हारा जो यह नियम है कि जो जो उत्पन्न होता है सो सो नष्ट होता है

सो सर्वथा निर्मूल है। फिर क्षय होनेवाला सुख यदि दुःखरूपी है तो वह धर्मका फल नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्यको जो करना उचित है सोई धर्म है तो क्या परमेश्वर उचितकारीको दुःखरूपी फल देगा। फिर तुम समझते हो कि धर्म ऐसी वस्तु है कि जिसको केवल एक परिमित कालमें करना है और पीछेसे चुपचाप बैठे बैठे उसका फल भोगना। और इसी-लिये तुमको यह डर है कि कुछ कालमें वह फल भी समाप्त हो जायगा। पर हमने कहा कि धर्म तो वह वस्तु है जिसका करना मनुष्यको सदा आवश्यक है चाहो वह इस लोकमें हो चाहो वह और किसी लोकमें हो जब लों उसका अस्तित्व है तब लों धर्माच-रण करना उसको आवश्यक है। सो जब लों वह धर्ममें रहेगा तब लों उसका शुभ फल भी सदा उसके साथ साथ रहेगा पर जब वह धर्मसे च्युत होगा तभी उसका फल भी नष्ट होगा। परंतु इससे जो उसको दुःख होगा सो कुछ धर्मका फल नहीं परंतु अधर्मका है क्योंकि धर्मसे च्युत होना अधर्म है। पर कदाचित् कोई पूछे कि ऐसा निरंतर धर्म करनेका किसको सामर्थ्य है सो यदि ऐसे धर्मका फल अनंत सुख भी हो तथापि उसकी आशा करके हमको क्या लाभ है। तो हम कहते हैं कि यह बात तो सच है कि हम सब मनुष्योंका स्वभाव ऐसा भ्रष्ट हो गया है कि हममें

धर्म्माचरणका सामर्थ्य नहीं है, इसलिये हम यदि अपने धर्म्म पर भरोसा करके परम पुरुषार्थ प्राप्त करनेकी आशा रखें तो कुछ लाभ न होगा। परंतु परमेश्वरने हम पापियों पर अनुग्रह करके अपना शास्त्र प्रगट किया है और उसमें एक ऐसी राह ठहराई है कि यदि हम उसको ग्रहण करें तो हमारे सर्व अपराध क्षमा किये जायेंगे और वह फल जो हमको धर्मसे प्राप्त करना था उसको हम केवल ईश्वरके अनुग्रहसे प्राप्त करेंगे और हमारा यह भ्रष्ट स्वभाव भी सुधरके शुद्ध हो जायेगा और तब हमको धर्माचरणका सामर्थ्य मिलेगा और ईश्वरकी समीपता दिव्य लोकके निवास और अनंत सुखको प्राप्त करेंगे॥

अब तुम्हारी धर्मके फल पर दूसरी शंका यह है कि उसमें तारतम्य होगा कि किसीको अधिक फल और किसीको कम फल मिलेगा और यह भी दुःखका कारण है। पर हम कहते हैं कि यह तारतम्य दुःखका वास्तविक कारण नहीं है। क्योंकि ईर्ष्यासे जो दुःख होता है उसका वास्तविक कारण उस मनुष्यका भ्रष्ट स्वभाव है। क्योंकि ईर्ष्या तो स्वभावका एक दोष है वह शुद्ध स्वभावमें नहीं पर भ्रष्ट स्वभावमें रहती है। और जिसका स्वभाव भ्रष्ट है उसका किया हुआ धर्म तो धर्मही नहीं इसलिये उसको धर्मका फलही नहीं मिल सकता। देखो इस बातसे भी कैसे प्रगट

होता है कि दर्शनकारोंको धर्माधर्मके तत्त्वका ज्ञान न था। क्योंकि वे नहीं जानते कि धर्मके लिये कैसा स्वभाव आवश्यक है। स्मरण करो जो हमने वर्णन किया है कि जो मनुष्यको करना उचित है सोई धर्म है। पर जिसका स्वभाव भ्रष्ट है सो क्योंकर उचित क्रिया कर सक्ता है। क्योंकि यद्यपि वह बाहरसे उचित क्रियाका अनुकरण करे तथापि महा अनुचित जो उसका दुष्ट स्वभाव है उसको तो वह अपनेमें लिये बैठा है। क्योंकि केवल बाह्य क्रिया जो मनुष्योंके देखनेमें आती है सोही धर्मका संपूर्ण रूप नहीं है। परन्तु वह क्रिया जो शुद्ध मनसे होती है सोही ईश्वरकी दृष्टिमें धर्म ठहरती है। इसका एक दृष्टान्त सुनो। अपने मित्रके साथ मित्रताका व्यवहार करना मनुष्यको उचित है। पर यदि कोई शठ मनुष्य केवल लोक लज्जासे अपने मित्रोंका ऊपरसे शिष्टाचार करे परन्तु मनमें द्रोह रक्खे तो कहो कि क्या ऐसा मनुष्य ईश्वरकी दृष्टिमें उचित क्रियाका करनेवाला ठहरेगा। इसलिये जानो कि जिस मनुष्यका स्वभाव शुद्ध है वही केवल धर्म करनेको समर्थ है और उसीको धर्मका फल भी प्राप्त होगा। और वह यद्यपि यह देखे कि दूसरेको अधिक धर्म करनेसे अधिक फल मिला है तथापि वह ईर्ष्या न करेगा। परन्तु शुद्ध स्वभावका यह गुण है कि वह औरोंकी सुखवृद्धिको देखके और

भी सुखी होता है। और इस प्रकारसे वह बात जो दुष्ट स्वभावके लिये दुःखका कारण होती है सो शुद्ध स्वभावके लिये और सुखकी उत्पादक होती है॥

इसी धर्माधर्मके स्वरूपको न जाननेसे पण्डित लोग वह दूसरी भूल करते हैं कि ज्ञानके प्राप्त करनेसे सब पिछले पाप नष्ट हो जाते हैं और जो उसके क्रियमाण कर्म हैं उनका उसको कुछ लेप नहीं होता अर्थात् ज्ञानी मनुष्यसे जो पाप नित्य२ होता जाता है उसका दोष उसको नहीं लगता। पर यह बात अत्यन्त भूलसे भरी हुई है। क्योंकि मैं शरीर नहीं हूं ऐसा जाननेमें और पापके नष्ट होनेमें क्या सम्बंध है। पाप करना तो वह काम है जो मनुष्यको सर्वथा और सर्व दशामें अनुचित है और इसलिये उसके करनेसे मनुष्य ईश्वरके साम्हने अपराधी और दण्ड्य ठहरता है तो क्या उसके यह जाननेसे कि मैं शरीर नहीं हूं कुछ अदल बदल हो जाती है। यदि कदाचित् यह बात तुम्हारे मनमें हो कि मनुष्य जो जो कर्म करता है सो मन इन्द्रिय और शरीरसे करता है इसलिये जब उसको यह ज्ञान होगा कि मैं उन सबसे भिन्न हूं तो वे कर्म भी उसको बद्ध नहीं कर सकेंगे। तो यह भी बड़े अविचारकी बात है। जिस मनुष्यने खड्गसे हत्या की है वह यदि यह जाने कि मैं खड्गसे भिन्न हूं तो क्या उसका दोष दूर होगा।

फिर यदि संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट होते हैं तो प्रारब्ध भी क्यों नहीं नष्ट होता। देखो ये सब कैसी बेठिकानेकी बातें हैं। सो इन सब बातोंसे यह सिद्धांत निकलता है कि मैं शरीर नहीं हूं इस ज्ञान-से मुक्तिकी आशा करना व्यर्थ है क्योंकि यह ज्ञान मनुष्यको न पाप कर्मसे और न उसके दण्डसे बचा सकता है॥

देखो इन बातोंसे स्पष्ट जान पड़ता है कि पण्डित लोग धर्म और अधर्मके तत्त्वको न जानके धर्माधर्मके नियमको एक निर्मूल और याहच्छिक नियम मानते हैं। जो जो उनके यहां धर्माधर्मके विषयमें लिखा है उससे यह स्पष्ट होता है कि इस विषयमें उनकी ऐसी कुछ समझ है कि जैसे भिन्न२ पदार्थोंमें भिन्न२ स्वाभाविक गुण हैं जैसे अन्नमें क्षुधा निवारण करनेका और विषमें मारनेका स्वाभाविक गुण है ऐसेही कितनी क्रियाओंमें स्वर्गादि सुख देनेका और कितनी क्रियाओंमें नरकादि देनेका स्वाभाविक गुण है। और जो सुखोत्पादक क्रिया है सोही धर्मक्रिया है और दुःखोत्पादक क्रिया अधर्मक्रिया है। इसीलिये वे समझते हैं कि अज्ञानी पुरुष जिनको स्वर्गादि सुखोंका अभिलाष हो वे धर्मका लोभ करें तो करें पर जो इस संसारके सुख और दुःख दोनोंसे उदास होके दोनोंसे छूट कर मुक्ति चाहता हो उसको तो

इस महा व्याधिसे अपना गला छुड़ानाही आवश्यक है। पर सहजमें इससे गला नहीं छूट सकता। क्योंकि जब लों मनुष्य अज्ञान दशामें है तब लों वह धर्मके बन्धनसे छूटनेके लिये यदि चाहे कि मैं धर्म क्रिया करना छोड़ देऊं तो इससे वह अधर्मी हो जायेगा। इसलिये ज्ञानही प्राप्त करना चाहिये क्योंकि वही उसका औषध है। फिर अधर्मके विषयमें भी ऐसीही उनकी समझ है। जैसे कितने पदार्थोंमें दुःखोत्पादकताका स्वाभाविक गुण है तथापि किसी २ दशामें वह गुण दब जाता है जैसे विषमें मारकताका स्वाभाविक गुण है परन्तु किसी किसी दशामें विष भी अपना गुण नहीं करता तैसाही मानों अधर्म क्रियामें यद्यपि नरकादि अनिष्ट उत्पन्न करनेका गुण है तथापि ज्ञानीके विषयमें वह मानों दब जाता है। क्योंकि ज्ञान उसका मारक है। इसलिये वे कहते हैं कि ज्ञानीको पापका लेप नहीं होता। परन्तु विशेष करके यह बात कि वे अन्न विषादि पदार्थोंके समान धर्माधर्म क्रियामें सुख और दुःख उत्पन्न करनेका स्वाभाविक गुण मानते हैं सो उनकी अपूर्वकी कल्पना-से स्पष्ट प्रगट होती है। वे अपूर्व नामक एक पदार्थ मानते हैं। उसका कारण यह है। वे कहते हैं कि धर्म क्रिया स्वर्गादिकका कारण है और अधर्म क्रिया नर-कादिकका। परन्तु यह क्योंकर हो सक्ता है। क्योंकि

आज किसीने धर्म क्रिया की तो उससे उसी समय स्वर्ग तो नहीं होता परन्तु बहुत कालके अनन्तर मरनेके पीछे स्वर्ग होता है तब वह धर्म क्रिया उसका कारण क्योंकर होगो। कारण तो वह है जो कार्यके अव्यवहित पूर्वकालमें होवे। सो यह महा संकट पण्डितों पर आ पड़ा जिसके निवारण करनेके लिये वे कहते हैं कि धर्माधर्मकी क्रियासे अपूर्व नामक एक पदार्थ मनुष्यमें उत्पन्न होता है। और वह उसमें तब लों बना रहता है जब लों वह मनुष्य धर्माधर्मकी क्रियाका फल स्वर्ग अथवा नरक जो हो उसको प्राप्त न करे। सो इस प्रकारसे धर्माधर्म क्रिया उसी अपूर्वके द्वारासे स्वर्ग नरकादिककी उत्पादक होती है। इसी अपूर्वको वे धर्माधर्म कहते हैं। पर हम उनसे पूछते हैं कि ऐसे संकटमें पड़नेका क्या कारण है। धर्माधर्म क्रिया तो साक्षात् इष्टानिष्ट फलोंकी उत्पादक नहीं है परन्तु परम्परासे है। पर किस प्रकारसे परम्परासे उत्पादक होती है। जैसा हमने कहा कि परमेश्वर जो न्यायी है सो मनुष्योंके धर्माधर्मको देखके आप उनको उनके फल देता है। सो उसका फल जब ईश्वरेच्छासे प्राप्त होता है तो जब ईश्वरकी दृष्टिमें उचित जान पड़ता है तब वह देता है चाहे तत्काल हो चाहे कुछ कालके अनन्तर हो तब इस विषयमें अपूर्वकी कल्पना करना क्या आवश्यक है। जब कोई

भृत्य किसीकी सेवा करता है ते। वह प्रतिदिन अपना बेतन पानेका अधिकारी है तथापि उसका स्वामी अपने नियत समयमें उसका बेतन देता है चाहे। एक मासमें अथवा छः मासमें अथवा वर्षमें हो। पर कदाचित् कोई कहे तुमने जो कहा कि भृत्य अपने स्वामीकी सेवा करते हुये नित्य नित्यकी सेवाके बेतन-का अधिकारी होता है ते। हम कहते हैं कि वह भृत्यका बेतनाधिकारी होना सोई अपूर्व है। ते। इसका उत्तर हम देते हैं कि यदि इतनाही तुम कहते ते। कुछ दोष न होता। परन्तु तुम अपूर्वको एक बास्तविक और भिन्न पदार्थ मानते हो। क्योंकि नैयायिक और वैशेषिक ज्ञान इच्छा सुख दुःख आदिक आत्माके बास्तविक गुणोंमें अपूर्वकी गणना करते हैं। पर यदि धर्माधर्म क्रियासे अपूर्व नामक एक भिन्न पदार्थकी उत्पत्ति मानते हो ते। जो मनुष्य दूसरे मनुष्यकी सेवा करता है उसकी सेवारूप क्रियासे भी एक अपूर्वकी उत्पत्ति माने। क्योंकि जो जो शंका धर्मा-धर्म क्रियाके विषयमें होंगी सोही सेवा कर्मके विषयमें भी आवेंगी। और न केवल सेवाके बरन औरभी अगणित बातोंके विषयमें भिन्न भिन्न अपूर्व मानने पड़ेंगे। तब तुम्हारे चैाबीस गुणोंकी जगह पर अनन्त गुण हो जायेंगे। फिर इस विषयमें जो दोष हमने पण्डितों पर दिया है सो यद्यपि नैयायिकादिकके

मतमें ऐसा प्रगट नहीं होता तथापि सांख्य और मीमांसकोंके मतमें स्पष्ट होता है। क्योंकि वे तो ईश्वर-को नहीं मानते तथापि कहते हैं कि धर्माधर्मकी क्रिया उसी अपूर्वके द्वारासे स्वर्ग नरकादिक फलोंको उत्पादक होती है। यह क्या अंधेर है। क्या इस बातसे नहीं स्पष्ट होता कि वे लोग धर्माधर्म क्रियाको अन्न और विषादि पदार्थोंके समान स्वभावसे फलकी उत्पन्न करनेवाली समझते हैं। उनकी समझमें जैसे बीजसे स्वतः अंकुर निकलता है और बढ़के फलोंको उत्पन्न करता है ऐसेही इन्द्राय स्वाहा कहके अग्निमें आहुति डालनेसे स्वभावतः अपूर्व नामे एक अदृश्य वृक्ष उत्पन्न होता है और वह स्वभावतः स्वर्गादिक फलोंको फलता है तब ईश्वरका क्या काम। अब यद्यपि हम यह नहीं मानते कि बिना ईश्वरेच्छाके बीजसे अंकुर भी हो सकता है परन्तु यह समझते हैं कि बीजमें जो अंकुर उत्पन्न करनेका स्वभाव है सोभी ईश्वरहीने रक्खा है। जैसा कि हम ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करनेमें दिखा चुके हैं। तथापि यहां हमको केवल इतना कहना है कि धर्माधर्म क्रियामें और उनके फलोंमें बीजांकुरकी समानता भी नहीं है। इसलिये यदि कोई मूढ़ बीजके विषयमें ऐसा भी समझे कि बीजमें आपसे आप अंकुर उत्पन्न करनेका गुण है तथापि धर्माधर्मके फलके विषयमें वह ऐसा

नहीं कह सक्ता। माने कि किसीने हत्या की कि एक खड्गको लेके किसीके गलेमेंसे आरपार चलाया और उसके शिरको उसके धड़से भिन्न किया। ते अब कहे कि जैसे बीजमें अंकुर उत्पन्न करनेका स्वाभाविक गुण है तैसाही क्या उस क्रियामें भी मरणोत्तर एक नरकके उत्पन्न करनेका अथवा जैसे तुम मानते हो दूसरे जन्ममें किसी निकृष्ट योनिमें जन्म दिलानेका स्वाभाविक गुण हो सक्ता है। यदि कोई इस विषयमें भी विवाद करे ते हम कहते हैं कि ऐसा मनुष्य जिसको पदार्थोंके स्वरूपको पहिचाननेके लिये इतना भी सहज विवेक नहीं है संभाषण करनेके योग्य नहीं। जब भृत्य अपने सेवाका बेतन पाता है तो क्या उसकी सेवाही बीजके समान बेतनको उत्पन्न करती है अथवा उसका स्वामी उसकी सेवाको देखके आप उसको बेतन देता है। अथवा चोर जे चोरी करके बन्दीगृहमें जाता है सो क्या उसकी चौर्य क्रियाही उस बातको उत्पन्न करती है अथवा राजा उसको वह फल देता है। पर देखो सांख्य और मीमांसक इस महा अज्ञानमें फंसे हैं। और दूसरे दर्शनकर्त्ता भी कुछ२ इस दोषमें भागी हैं। क्योंकि हमने इस ग्रंथके आरम्भमें जहां दर्शनोंके उन, सिद्धान्तोंको लिखा है जे सब दर्शनोंमें समान हैं उनको जे पढ़ेगा से जान जायगा कि यद्यपि कई एक बातोंमें दर्शन-

कर्त्ता एक दूसरेसे विरुद्ध हैं तथापि प्रायः मूल बातोंमें सभोंकी बिचारकी रीति और बुद्धिकी दौड़ और झुंकाहट समानही है। उन सभोंके घरोंकी एकही प्रकारकी नेव और एकही मसाला और ढांचा है। यद्यपि ऊपर ऊपरकी बनावटमें कुछ भेद है। और यद्यपि एक प्रकारकी भूल एक दर्शनमें अधिक प्रगट होती है तथापि उसका बीज औरोंमें भी रहता है॥

४ चौथा अध्याय।

जिसमें नैयायिक और वैशेषिकोंके मतके समान जो मुक्तिकी दशा है उसकी परीक्षा है।

सो इस प्रकारसे न्याय और वैशेषिकका ईश्वर और जीव और जीवकी दुर्दशा उसके कारण और उससे छूटनेके उपाय और धर्माधर्मादि पदार्थोंके विषयमें जो मत है उसका बर्णन हमने किया। अब एक बात और कहना है जिसको कहके हम इस द्वितीय भागको समाप्त करेंगे। वह बात यह है कि नैयायिक और वैशेषिकोंका ईश्वर आदि विषयक ज्ञान ऐसा अयोग्य है इसलिये वे एक दरिद्र दशाको निःश्रेयस कहते हैं। क्या ज्ञान इच्छादिक सब चेतन धर्मोंसे रहित होके पाषाण बन जाना यही परम पुरुषार्थ है। ऐसी दशामें और नाशमें क्या भेद है।

पण्डित लोगोंको जो इस विषयमें अनेक शंका होती हैं कि यदि निस्तारकी दशामें हम ज्ञान इच्छादिक मानें तो फिर बुरी इच्छा उत्पन्न हो कर पापमें पड़नेका डर है और एक दूसरेको देखके ईर्ष्यादिक उत्पन्न होंगे इत्यादि उनके उत्तरमें हम कहते हैं कि जो लोग परमेश्वरके सामर्थ्य और उसके अनुग्रहके महत्त्वको न जानें वे ऐसी शंका करें। परन्तु हमारे पास परमेश्वरका सत्य शास्त्र है और उससे यह प्रगट होता है कि ईश्वरने जो निस्तारका मार्ग ठहराया है उसका स्वीकार करनेसे जो लोग ईश्वरके अनुग्रहके भागी होते हैं वे मरणोत्तर दिव्य लोकमें जाते हैं और उनके स्वभावको परमेश्वर ऐसा शुद्ध करता है कि फिर उनको कभी दुष्ट इच्छा ईर्ष्या वैर अहङ्कार आदिक दुष्ट विकारोंका डर न रहेगा और वे दिव्य लोकमें दिव्य और विकार रहित शरीरको प्राप्त करके ज्ञान इच्छादिक सब चेतनके धर्मोंको रखते हुये अनन्त काल तक ईश्वरका साक्षात्कार और उसके समागम और भक्ति आदिकके निरुपम और वर्णनातीत दिव्य आनन्दका और स्वभावके निर्मल होनेसे मानसिक प्रसन्नता और शान्तिका उत्तरोत्तर अधिकाधिक अखण्डित भोग करते रहेंगे। सो कहो तो ऐसी दशाको परम पुरुषार्थ कहना योग्य है अथवा उस जड़ताकी दशाको। वह तो परम पुरुषार्थ नहीं

बरन महा अधःपात है। तुम कहते हो कि जीव अनादि कालसे हैं और उन्होंने अगणित जन्म और मरण पाये हैं। और अनादि कालसे कि जिसकी कुछ अवधि नहीं इस संसारके घोर दुःखको भोगते आये हैं। तो जब उनमेंसे किसीकी आंख खुली और उसने चाहा कि मैं इस दुर्दशासे छूटूं और उसके लिये भी अनेक जन्मलों जप तप ध्यान धारणा की तो इस सबका फल अन्तको क्या पाया कि पाषाणके तुल्य जड़ हो गया जो दशा केवल नाश रूपही है। तो जीवोंके समान दुर्भग कोई न ठहरा कि जब लों रहे तब लों दुर्दशाके अधीन रहे पर उससे छुटकारेकी आशा उनको केवल नष्ट होनेमें है। यदि हम नास्तिक होके ईश्वरको न मानें और हमको अपनेही प्रयत्नसे अपना छुटकारा प्राप्त कर लेना हो तब तो ऐसेही निःश्रेयसकी आशा करना हमको योग्य होगा। पर जब हम अचिन्त्यशक्तिमान् सर्व भद्रतासे परिपूर्ण अति उदार परम दयालु सब मंगलोंके दाता ईश्वरको मानते हैं और उसीसे उद्धार प्राप्त करनेकी आशा रखते हैं तो ऐसी दरिद्र दशासे कुछ अच्छे निःश्रेयसकी आशा रखना अधिक सयुक्तिक जान पड़ता है। परमेश्वरके सत्य शास्त्रमें परम पुरुषार्थ पानेकी दो राहें कहीं हुई हैं। एक तो मनुष्यकी करनी और दूसरे परमेश्वरका स्वतन्त्र अनुग्रह है।

करनीकी राह यह है कि मनुष्यको जो करना उचित है उसको करके परमेश्वरसे अपने कर्मका फल पावे। सो जो जीव ऐसी दशामें सदा बना रहेगा उसका फल भी जो आनन्द रूप है सदा उसके साथ बना रहेगा। और वही उसके लिये परम पुरुषार्थ है। पर फिर परमेश्वरके शास्त्रमें लिखा है कि हम तुम इस बातके योग्य नहीं हैं। क्योंकि हम तुम पाप करके भ्रष्ट हो गये और हमारी करनी ईश्वरके आगे ग्राह्य होनेके योग्य नहीं। इसलिये हमारा कल्याण केवल ईश्वरके अनुग्रहसे हो सक्ता है। हमने अपनी करनीसे तो केवल नरक कमाया परन्तु इसलिये कि ईश्वरमें दयाका गुण है वह अपने स्वतन्त्र अनुग्रहसे हमको बचाने चाहता है। और इस अनुग्रहकी प्राप्तिके लिये उसने एक ऐसा अद्भुत उपाय ठहराया है कि जिसमें उसकी अपरम्पार और वर्णनातीत दया भी प्रगट हो और उसके न्याय और पवित्रतामें भी कलंक न लगे। सो जब उसने हमको कृतार्थ करनेके लिये अपनी अपरम्पार दयाका भण्डारही खोला तो क्या वह हमको केवल पाषाणकी दशाही देके कृतार्थ करेगा। सो देखो चाहो करनीकी राहसे हो अथवा ईश्वरानुग्रहकी राहसे हो दोनों प्रकारसे अनन्तानन्द प्राप्तिको परम पुरुषार्थ कहनाही योग्य ठहरता है। तब तुम जड़ताकी दशाको क्यों परम

पुरुषार्थ ठहराते हो। परन्तु सत्य बात तो यह है कि यह बात केवल परमेश्वर प्रकाशित शास्त्रके प्रकाशकी सहायता पानेहीसे समझ पड़ती है। जो मनुष्य केवल अपनी बुद्धिसे इस बातमें तर्क किया चाहे तो वह ऐसाही कुछ सिद्धान्त निकालेगा जैसा दर्शनकारोंने निकाला है कि अचेतन बननाही निःश्रेयस है। वे लोग ऐसा कुछ समझते हैं कि मानों अपनेही उपाय और प्रयत्नसे अपनेको मुक्त करना है। सो वे बेचारे अनन्तानन्दको कहांसे ले आवेंगे इसलिये कहते हैं कि जो इतना भी हो सके कि अपनेको अचेतन बनाके संसारके तापसे छूट जायें तो मानों सब कुछ प्राप्त कर चुके। पर हे प्यारो यह जानो कि इतना भी तुम नहीं कर सक्ते। जीवको तो ईश्वरने चेतन बनाया है उसको अचेतन कौन बना सकेगा। जो स्वभाव परमेश्वरने जीवमें रक्खा है सो मैं मन नहीं मैं शरीर नहीं ऐसी भावना करनेसे दूर नहीं हो सक्ता। परन्तु जानो कि हमारे तुम्हारे जीव अनन्त काल लों चेतनही रहेंगे। परन्तु दो बातें हमारे हाथमें हैं। परमेश्वरने अपने सत्य शास्त्रमें जो उद्धारका मार्ग बताया है यदि हम उसका स्वीकार करें तो अपनी इस चेतनताको अनन्तानन्द भोगनेका कारण ठहरावेंगे। परन्तु यदि उसका स्वीकार न करें तो उसी चेतनताको सदा सर्वदाके अखण्ड क्लेश

व्याकुलता और घोर तापके अनुभवका कारण बनावेंगे। सो यदि तुम अपना कल्याण चाहो तो परमेश्वरके सत्य शास्त्रका ग्रहण करो। और हमने जो दर्शनोंके दोष इस प्रकरणमें दिखाये सो कुछ इसलिये नहीं कि निज करके दर्शनकर्त्ताओंको दोषी ठहराके उन पर हंसी करें। परन्तु हमारा तात्पर्य इस बातके प्रगट करनेमें है कि क्या वे क्या हम क्या और कोई लोग जब केवल अपनी बुद्धिसे पारमार्थिक बातोंका बिचार करने चाहें तो सर्वथा भूलमें पड़ेंगे। क्योंकि इन बातोंका योग्य ज्ञान प्राप्त करना मनुष्यकी बुद्धिको अशक्य है। सो जब तुम देखो कि ख्रिस्तीय मतमें उन बातोंका योग्य वर्णन है तब तुमको निश्चय होगा कि यह सच मुच ईश्वरीय मत है। इसलिये हम चाहते हैं कि तुम सरलात्मा होके ख्रिस्तीय शास्त्रको बिचारो। पर इस बातके लिये स्थिरता और नम्रता और दीर्घ बिचार आवश्यक हैं। क्योंकि जिन बातोंको मनुष्य चिरकालसे माने हुये है उनके दोष और उनके विपरीत नवीन बातोंकी उत्तमता शीघ्र मनमें नहीं बैठती। परन्तु नम्रतासे परमेश्वरकी प्रार्थना करके योग्य बिचार करोगे तो सत्यकी पहिचानको प्राप्त करोगे ॥ ० ॥

यहां षड्दर्शन दर्पणका दूसरा भाग समाप्त भया ॥